१८५७ की क्रान्ति

और

रुहेलखंड

लेखक—

श्री प्रतापचन्द्र आज़ाद

एम० ए०, एल-एल० बी०

एडवोकेट

प्रस्तावना लेखक—

डाक्टर सम्पूर्णानन्द

मुख्य मन्त्री—उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक:—

स्वराज्य प्रकाशन

३५/२८ सिविल लाइन्स, बरेली।

द्वितीयवार
१९६५

मूल्य २)

१८५७ की क्रान्ति
और
रुहेलखंड

लेखक

प्रतापचन्द्र आजाद

एम० ए० एल-एल० बी० (एडवोकेट)

प्रस्तावना लेखक—

डाक्टर सम्पूर्णानन्द

मुख्य मन्त्री—उत्तर प्रदेश

प्रकाशक:—

स्वराज्य प्रकाशन

३५/२८ सिविल लाइन्स, बरेली।

द्वितीयवार १९६५, मूल्य २)

प्रकाशकीय

"१८५७ की क्रान्ति और रुहेलखण्ड" का प्रथम संस्करण १८५७ में क्रान्ति की शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित किया गया था जो कि हाथोहाथ बिक गया। उक्त पुस्तक की लोकप्रियता ने हमे यह दूसरा संस्करण आपके सम्मुख प्रस्तुत करने के लिये विवश किया है।

श्री पी० सी० आजाद ने क्रान्ति का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है जिससे हर पढ़ने वाले व्यक्ति के हृदय मे स्फूर्ति उत्पन्न होती है। राष्ट्र निर्माण मे एवं राष्ट्रीय एकता पैदा करने के उद्देश्य मे भी यह पुस्तक एक मूल्यवान कड़ी साबित हुई है।

मुझे पूर्ण आशा ही नही विश्वास है कि जनता श्री आजाद के इस प्रयास से अवश्य लाभान्वित होगी।

—सत्यवीर
प्रकाशक
स्वराज्य प्रकाशन

जनवरी १९६५

प्रथम संस्करण
१९५७
द्वितीय संस्करण
१९६५

समर्पण

मैं इस पुस्तक को १८५७ के उन ज्ञात तथा अज्ञात सभी सेनानियों को जिन्होंने स्वातन्त्र्य संग्राम की नीव को अपने रक्त से सिंचित कर भारतीयों को जागृति-पथ पर अग्रसर किया—समर्पण करता हूँ।

प्रतापचन्द्र 'आज़ाद'

दो शब्द

१८५७ की क्रान्ति, जिसे अंग्रेजी शासकों ने गदर अथवा सिपाही विद्रोह (Sepoy Mutiny) के नाम से उल्लेख किया है, वास्तव मे वह भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता का प्रथम समर था, जिसमे प्रथम बार भारतवर्ष के हिन्दू मुसलमान तथा अन्य सभी वर्गों ने, जिनके हृदय में भारत की स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम था, एक मत होकर बृटिश साम्राज्य शाही के विरुद्ध स्वतन्त्रता का झण्डा ऊंचा किया था। यदि उस क्रान्ति का संगठन उचित रूप से होता, और साधनो का अभाव तथा यातायात की असुविधा न होती और पंजाब के फौजी सिक्खों तथा जाटों और भरतपुर, ग्वालियर आदि के शासकों ने देश के विरुद्ध गद्दारी करके अंग्रेजों का साथ न दिया होता तो आज इस क्रान्ति का इतिहास दूसरे ही प्रकार से लिखा जाता। किन्तु फिर भी देशभक्त नाना बाजीराव पेशवा, बहादुरशाह, रानी लक्ष्मी बाई, मौलवी अब्दुल मजीद, तात्या टोपे, खान बहादुर खां, बख्त खां और कुंवर जगदीशसिंह आदि ने जिस वीरतापूर्ण, सीमित साधनों के अन्तर्गत, इस महान क्रान्ति का संचालन और संगठन किया वह सदैव भारत के इतिहास मे स्वर्ण अक्षरो में लिखा रहेगा। इस क्रान्ति में रुहेलखण्ड का विशेष स्थान रहा है। इसलिये कि रोहेलो के कप्तान (सेनापति) बख्त खां ने ही बहादुर शाह की ओर से दिल्ली की फौजों की बागडोर सम्भालकर इस क्रान्ति का नेतृत्व किया था।

मैंने अनेकों पुस्तकों, पत्र तथा पत्रिकाओं की सहायता इस पुस्तक के लिखने मे प्राप्त की है, मैंने सत्य को खोजने में भरसक प्रयत्न किया है। मैं उन समस्त महानुभावो का अनुग्रहीत हूँ, जिन्होने इस पुस्तक को पूर्ण बनाने के हेतु विभिन्न सामग्री एकत्रित करके मेरे इस कठिन कार्य को सरल बनाया है। मैं उन महानुभावो का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक के प्रकाशन मे सहायता दी है।

विशेषतया मैं माननीय डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी राज्यपाल राजस्थान का अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की कृपा की। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९५७ ई० मे १८५७ की क्रान्ति की शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हुआ था जो हाथो हाथ बिक गया। अब इस पुस्तक का दूसरा संस्करण पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

—प्रतापचन्द्र 'आज़ाद'

पुस्तकें जिनसे सहायता ली गई

१. भारत मे अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष ।
२. भारत मे अंग्रेजी राज्य (श्री सुन्दर लाल)
३. भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य समर (श्री विनायक दामोदर सावरकर)
४. हिस्ट्री आफ दी इन्डियन म्यूटिनी (चार्ल्स बाल)
५. कांग्रेस का इतिहास (डाक्टर पट्टाभि सीता रमइया)
६. बहादुर शाह
७. भारत का इतिहास (डाक्टर ईश्वरी प्रसाद)
८. भारत का राष्ट्रीय इतिहास (श्यामकिशोर मालवीय)
९. एसेज आन दी इन्डियन म्यूटिनी (हेरल्ड डे)
१०. हिस्ट्री आफ दी इन्डियन म्यूटिनी (होम्स)
११. ए हिस्ट्री आफ दी सीपाय वार इन इन्डिया (सरजान विलियम के)
१२. हिस्ट्री आफ़ दी इन्डियन म्यूटिनी (के० यम० मलसन)
१३. दी सीपाय रिवोल्ट (हेनरी मीट)
१४. माई डायरी इन इन्डिया इन दी इयर १८५८--५९ (सर वी० हावर्ड रसेल)
१५. कम्प्लीट हिस्ट्री आफ दी ग्रेट सीपाय वार (व्हाइट)
१६. इन्डियन म्यूटिनी (चार्ल्स बाल)
१७. रेड पैम्फलेट
१८ हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी के पत्र और पत्रिकायें ।

विषय सूची

प्रस्तावना

इस साल सन् १८५७ की शताब्दी सारे देश में मनाई गई थी। यह समारोह अभी १५ अगस्त तक चलेगा। निश्चय ही इस विषय में उत्तर भारत और उसमें भी विशेषतः पटना से दिल्ली तक के भूखण्ड में अधिक उत्साह दिखलाया गया। इसका कारण स्पष्ट है। सन् ५७ के नाटक का यही भूभाग रंगमंच था। यही पर वीरता, त्याग और धैर्य की वह घटनाये घटी जो हमको स्फूर्ति देती हैं। इसमें भी सन्देह नहीं कि भारतीयों ने भी निरपराधो के खून से अपने हाथ रंगे। आज इस बात को स्वीकार करने में हमको कोई संकोच न होना चाहिये। भूल को मान लेना बडप्पन का लक्षण है।

सन् ५७ में जो हुआ वह क्या था केवल सिपाहियों का विद्रोह था या स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन ? जो लोग उस नाटक के मुख्य पात्र थे उनके उद्देश्य क्या थे, अपना या अपने कुटुम्ब का स्वार्थ, बदले की भावना की तृप्ति या देश की स्वाधीनता ? इन प्रश्नों का एक सुनिश्चित उत्तर नही दिया जा सकता। विभिन्न भारतीय और विदेशी इतिहासज्ञों ने अपनी पृथक पृथक सम्मतियां दी हैं। सम्भवतः कोई एक उत्तर देना सम्भव भी नही है। सब लोगो का एक ही उद्देश्य रहा होगा। ऐसा कहना स्यात् ठीक न होगा। एक ही व्यक्ति के चित्त में अनेक प्रकार के विचार उथलपुथल मचा रहे होगे। ऐसा ही समीचीन प्रतीत होता है। आन्दोलन उठा और असफल रहा। ९० वर्ष के बाद वह दिन आया जब भारत से अंग्रेजी शासन उठ गया।

इस पुस्तक के लेखक

श्री प्रतापचन्द्र 'आजाद'

हमें उस जमाने के प्रमुख व्यक्तियों और उनके कामों को भूलना न चाहिये। उनके साहस और पराक्रम से शिक्षा लेनी चाहिये, उनकी आशावादिता से हमको बल मिलना चाहिये और उनकी भूलों और असफलताओं से सतर्कता सीखनी चाहिये। उत्तर प्रदेश के जिन भागों ने उस समय की घटनाओं में दिल खोलकर भाग लिया उनमें रुहेलखण्ड भी था। कोई देशव्यापी सुव्यवस्था नहीं थी, संगठन नहीं था। सर्वमान्य नेतृत्व नहीं था। एक दूसरे के साथ जो सम्पर्क था वह बहुत ही पतला था। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक था कि एक कोने में जो स्मरणीय काम हुये उनका प्रभाव अन्यत्र बहुत कम पड़ा। रुहेलखंड का तत्कालीन इतिहास इस बात का प्रमाण है। वह जमाना गया परन्तु उन लोगों के आदरणीय चरित्रों और चरितों की याद बनाये रखना हमारा कर्तव्य है। श्री प्रताप चन्द्र आज़ाद ने इस दिशा में जो प्रयत्न किया है वह प्रशंसनीय है। रुहेलखण्ड का उस समय का इतिहास १८५७ के इतिहास की एक मूल्यवान कड़ी है जिसका संग्रह होना बहुत आवश्यक था।

सम्पूर्णानन्द

लखनऊ
जुलाई ११, १९५७

क्रान्ति और उसके कारण

१८५७ की क्रान्ति जिन कारणों एवं जिन परिस्थितियों के बीच हुई उनके सम्बन्ध में इतिहासकारो और राजनीतिज्ञों के विभिन्न मत हैं। किन्तु कुछ ऐसे कारण है जिनका प्राय: सभी इतिहासकारों ने उल्लेख किया है, इनमें सबसे मुख्य कारण, जिसका सभी इतिहासकारों ने उल्लेख किया है, ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा प्रचलित चमड़ों के कारतूसो को बताया है। उन सब का मत है कि कारतूसो के विरुद्ध भारतीय सेनिको में यह भ्रम फैलाया गया कि इन कारतूसों में गाय तथा सूअर की चर्बी का प्रयोग हुआ है। अत: भारतीय सैनिकों; जिन में हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही सम्मिलित थे, उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची और ईस्ट इंडिया कम्पनी के ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध एक विप्लव उठ खड़ा हुआ। इसमें कोई सन्देह नही कि यह भी एक कारण १८५७ की क्रान्ति का था, किन्तु केवल यही एक मुख्य कारण नहीं कहा जा सकता। इस क्रान्ति के कई मुख्य कारण थे। सबसे बड़ा कारण भारतीय देश भक्तों की स्वदेश प्रेम की भावनायें थी, जिनके कारण भारतीय देश भक्त भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराना अपना धर्म तथा कर्तव्य समझते थे। देश भक्त हिन्दू और मुसलमान सभी यह भली भांति जानते थे कि यदि अंग्रेजी शासन भारत मे जड़ पकड़ गया तो भारत शताब्दियों के लिये गुलाम बन जायेगा। इस भावना से ही प्रेरित होकर इन देश भक्तों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जनता विशेषतया सैनिकों में क्रान्ति के आन्दोलन का बीजारोपण किया। इस भावना के उत्तेजित करने में कम्पनी और उसके कर्मचारियों

द्वारा भारतीय जनता के प्रति किये गये अनेक अत्याचारो ने सोने पर सुहागा का कार्य किया, और क्रान्ति की अग्नि को बड़े वेग से प्रचण्ड किया। दूसरा कारण लार्ड डलहौजी की कम्पनी के राज्य के विस्तार की नीति थी। लार्ड डलहौजी ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को स्थापित करने के लिये कई कुचक्र चले, सुधार के नाम पर कई निर्बल राज्यों को कम्पनी के अधिकार में ले लिया, फिर सुरक्षा के नाम पर समस्त कमजोर राज्यों को विदेशी सेना रखने पर बाध्य किया। कितने ही राजाओ के गोद लिये हुये दत्तक पुत्रों को स्वीकार न करके उनके राज्यों को कम्पनी ने हड़प कर लिया।

डलहौजी की इस नीति से भारत की जनता और राज्यो के नरेश दोनों ही के हृदय में कम्पनी की सरकार के विरुद्ध अविश्वास, घृणा और असंतोष की लहर दौड़ गई।

तीसरा कारण कम्पनी की सरकार द्वारा भारतीय सैनिको के साथ दुर्व्यवहार था। ब्रिटिश सैनिकों और भारतीय सैनिकों मे बड़ा भेदभाव बरता जाता था। ब्रिटिश सैनिको को न केवल वेतन और भत्ते में ही विशेषता दी जाती थी वरन् उनके तुलना में भारतीय सैनिकों को गिरा हुआ और नीच समझा जाता था। मराठा, राजपूत तथा मुगल दरबारों में वीर सैनिकों को इनाम और जागीरें दी जाती थीं, किन्तु कम्पनी ने यदि कुछ दे दिया तो कोरा धन्यवाद, फिर भारतीय सैनिकों के साथ कम्पनी के कर्मचारियों का व्यवहार अमानुषिक भी था। इस अमानुषिक व्यवहार की पुष्टि करते हुये श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक में लिखा है 'मराठो, तथा निजाम के सैनिक जब महत्वपूर्ण लड़ाइयों में विजयी होकर आते तब उन्हें पारितोषिक तथा जागीरें देते थे, वहाँ कम्पनी सरकार ने उनके सैनिको को मीठे धन्यवाद के सिवाय कुछ न दिया था। जिन सिपाहियों के केवल बचन से हिन्दुस्तान अंग्रेजों के आधीन हुआ था उनसे अर्थर वेजली इतना

हीन बरताव करता कि यदि कोई सिपाही घायल हो जाय तो उसे रुग्णालय में भेजने के बदले तोप से उड़ा देता था।"

चौथा मुख्य कारण अंग्रेजो की दासता से उत्पन्न भारतीय जनता मे असन्तोष। भारत के सभी समझदार और राजनीतिज्ञ यह अनुभव करने लगे थे कि भारत अब शनैः शनैः अंग्रेजो का सदैव के लिये गुलाम होता चला जा रहा है। उनके सामने भारत की पराधीनता का नग्न चित्र था, जिसे देखकर उनके दिलो मे अंग्रेजी शासन के विरुद्ध क्रान्ति की भावनायें उठ रही थी। किन्तु साधनों की कमी, केन्द्रीय संगठन का अभाव, हिन्दू और मुसलमानो का वैमनस्य, पंजाब की सिक्ख और जाट सेनाओ का असहयोग, देशी नरेशो की आपस की फूट और स्वार्थ ने इस क्रान्ति का उद्देश्य पूरा नही होने दिया फिर भी इस क्रान्ति ने जितनी सफलता प्राप्त की उसकी प्रशंसा नही की जा सकती।

इस क्रान्ति का पाँचवां कारण देशी नरेशो के राज्यो का कम्पनी द्वारा शनैः शनैः हथिया लेना और कम्पनी द्वारा राज्यो मेंसुधार और सुरक्षा के नाम पर वहाँ के नरेशों को अंग्रेजी सेना रखने पर बाध्य करना था। लार्ड डलहोजी ने अपने शासनकाल मे कितने ही देशी नरेशो के राज्यो को हडप लेने के लिये उनके दत्तक पुत्रो को गद्दी का वैधानिक उत्तराधिकारी मानने से निषेध कर दिया। झाँसी की रानी महारानी लक्ष्मी बाई तथा कानपुर के उत्तराधिकारी नाना साहब दोनों के राज्य इसी नीति से हडप किये गये। परिणाम यह हुआ कि दोनों ही १८५७ की क्रान्ति के संचालक के रूप में कम्पनी सरकार की जडो को खोखला करने लगे।

छठा कारण जिसने इस क्रान्ति का बिस्फोट किया वह था कारतूसो को मुँह से चिकना करने का प्रश्न। क्रान्ति का श्रीगणेश इन्हीं कारतूसो के नाम पर हुआ। इसमें सन्देह नही कि इस कथन और प्रचार में बहुत कुछ तथ्य था, कि यह कारतूस गाय तथा सुअर की चर्बी की सहायता

से बनाये गये थे, इनको मुंह से चिकना करना पड़ता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों जाति के सैनिकों की धार्मिक भावनाये इन कारतूसो के प्रयोग से उत्तेजित हो उठी और क्रान्ति के विस्फोट के हेतु समय का सबसे बड़ा कारण बन गई। इतिहासकारो ने इन कारतूसों मे गाय आदि की चर्बी होने का समर्थन इन शब्दों में किया है।

"The recent researches of Mr. Forest lie the record of Government of India proves that Lubricating mixture used in preparing the carridges were composed of objectionable ungredients cows' fat." (Kay vol I)

एक और भी महत्वपूर्ण कारण था। वह था ईसाई धर्म का प्रचार। इतिहासकारो ने ईसाई धर्म को बलात् फैलाने के कार्य को कोई विशेष महत्व नही दिया है, परन्तु वास्तव में वह कारण भी बड़ा महत्वपूर्ण है और वह यह कि शासन द्वारा ईसाई धर्म का खुला प्रचार और धर्म के आधार पर पक्षपात, जिसको ईस्ट इन्डिया कम्पनी के प्रमुख सदस्य पेगल्स ने ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स में भाषण देते हुये इन शब्दो द्वारा सम्बोधन किया था। "भारत में एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा की विजय पताका लहराने के लिये ही भारत का विशाल साम्राज्य भगवान ने हमारे लिए सौंपा है। इसलिये समस्त भारत को ईसाई बनाने के इस महान कार्य में किसी तरह ढीलापन न करते हुये प्रत्येक अपनी शक्ति भर यत्न करे।" भारत में सदैव से एक धर्म निरक्षेप राज्य की भावनायें रही हैं। इतिहास साक्षी है कि जब भी किसी नरेश अथवा विदेशी अधिकारी द्वारा धर्म के आधार पर यहाँ की जनता के साथ पक्षपात किया गया अथवा बलात् धर्म फैलाने की चेष्टा की गई तब तब उस साम्राज्य को पतन और असफलता का मुंह देखना पड़ा है। अंग्रेजी शासकों को भी १८५७ की क्रान्ति के बाद यह बात समझ में आई। १८५७ की क्रान्ति के पश्चात विक्टोरिया

की घोषणा में भारत की जनता को यह आश्वासन देने का प्रयास किया गया था कि भविष्य में अंग्रेजी शासन में प्रत्येक धर्मावलम्बी को अपने धर्म के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। कम्पनी का राज्य स्थापित होने पर ईसाई धर्म का न केवल प्रचार किया गया वरन् सेना के सिपाहियों तक को ईसाई बनने पर बाध्य किया जाता था। जब कोई सैनिक अपना धर्म त्याग कर ईसाई बन जाता तो उसकी पदोन्नति की जाती थी। स्वयं बंगाल पैदल सेना का सेनापति इन शब्दों में इस कथन का समर्थन करता है। "मैं लगातार २८ वर्षों से सैनिकों को ईसाई बनाने का कार्य कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि इन मूर्ति पूजक सैनिकों की आत्मा शैतान से सुरक्षित रहें" इन्हीं सब कारणों का परिणाम १८५७ की महान क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ।

***

क्रान्ति की पृष्ठभूमि में

१८५७ की क्रान्ति के विस्फोटों से पूर्व कुछ महत्वपूर्ण घटनायें उल्लेखनीय है, और वास्तव मे इस क्रान्ति की रूप रेखा इन्ही घटनाओ के आधार पर निर्मित हुई थी। ईस्ट इडिया कम्पनी मुगल साम्राज्य के शासन काल में ही पनपी। शाहजहाँ और जहाँगीर के शासनकाल मे इसको भारत मे व्यापार करने की अनुमति मिली। किन्तु जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों ही इस कम्पनी को केवल एक व्यापारी संस्था के अतिरिक्त ओर कुछ न समझ सके। इसी कारण उन्होने इसकी हलचलो के विरुद्ध कोई आपत्ति न की, किन्तु औरङ्गजेब ने जब शासन की बागडोर अपने हाथ मे ले ली तो उसे इस कम्मनी से कुछ सन्देह हुआ। वह बड़ा ही चतुर और कुशल राजनीतिज्ञ था, अत: उसने समय समय पर ईस्ट इडिया कम्पनी तथा अन्य विदेशी कम्पनियों के विरुद्ध कडी निगाह रक्खी और समय समय पर चेतावनी भी दी। कई बार उसे इन कम्पनियो के विरुद्ध कडी कार्यवाही भी करनी पड़ी, किन्तु वह भी बुढापे में दक्षिण के युद्ध और मरहठो के छापेमार सैनिको की कार्यवाही में ऐसा उलझा कि अपने को सम्भाल न सका और उसे इतना अवसर न मिल सका कि वह अंग्रेजी व्यापारियो पर कडी निगाह रक्खे। औरङ्गजेब के पश्चात उसके राज्य का सितारा ही गरदिश मे आ गया, अत: ईस्ट इन्डिया कम्पयी को अपनी मनमानी करने और भारत पर अधिकार जमाने का सुनहरा अवसर मिल गया। दक्षिण में हैदरअली, मध्य भारत में मरहठे अभी भी शक्तिशाली थे और अग्रेज उनसे एक साथ लोहा भी लेना नही चाहते थे। इसी कारण इन शक्तियो से पहले ही उन्होंने सन्धि की नीति बनाई। शनै: शनै: कम्पनी ने यह नीति अपनाई कि जब दो नरेशों में झगडा हो तो एक का साथ देकर जिताने और दूसरे को हराने का प्रयत्न करते। हारने वाले के राज्य पर कम्पनी का जो अधिपत्य होता वह तो होता ही परन्तु जीतने वालो से

कम्पनी इतना लडाई का खर्च वसूल करती कि वह राज्य सदैव के लिये कम्पनी की सत्ता में आ जाता। इस प्रकार कम्पनी ने अनेको छोटे छोटे राज्यो पर अपना आधिपत्य जमा लिया। टीपू सुल्तान की हार, बर्मा और नैपाल के पतन के पश्चात कम्पनी का रास्ता और भी साफ हो गया। कम्पनी समस्त भारत पर अपना अधिकार करने की सोचने लगी। इसी प्रकार कितने ही राज्यो को उसने अपने प्रत्यक्ष अधिकार में ले लिया और कुछ मे अपनी सेनायें रखकर अप्रत्यक्ष रूप में उनको अपने अधिकार में कर लिया। सन १८३७ में अंग्रेज सरकार द्वारा एक नई नीति का संचालन किया गया, जिसके द्वारा निःसंतान नरेशों को दत्तकपुत्र गोद लेने पर कम्पनी की अनुमति लेनी पडती थी और कम्पनी को यह अधिकार था कि किसी भी नरेश को दत्तक पुत्र गोद न लेने दे, अथवा किसी भी दत्तक पुत्र को मान्यता न दे। इस कूटनीति के आधार पर सितारा और कई अन्य राज्यों के कम्पनी ने दत्तक पुत्रो को अवैध घोषित करके वहाँ के राज्यो को कम्पनी के राज्य में विलीन कर लिया। जिनमें बाजीराव पेशवा और झांसी की रानी के नाम उल्लेखनीय है।

७ जून सन १८४७ को बाजीराव पेशवा द्वितीय ने नाना जी को गोद लिया। उस समय नाना की आयु दो वर्ष की थी। बाजीराव ने नाना को अपना उत्तराधिकारी भी घोषित कर दिया। सन १८५१ में बाजीराव पेशवा का देहान्त होगया। बाजीराव का राज्य सन १८१८ ई० मे ही कम्पनी के अधिकार में आ चुका था और बाजीराव को केवल ८ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन मिलती थी। इस पर भी बाजीराव ने अंग्रेजों को कई युद्धों में धन की सहायता दी। अफगानिस्तान के युद्ध में पचास लाख रुपया सहायतार्थ अंग्रेजो को दिया था। यह सदैव अंग्रेजो का वफादार और विश्वासपात्र रहा। किन्तु अंग्रेजो ने वफादार और विश्वासपात्र मित्रो को कभी भारत मे पनपने ही न दिया। वफा

का बदला दगा और विश्वासपात्र का विश्वासघात, यह अंग्रेजी साम्राज्य के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त थे। बाजीराव अपनी मृत्यु से पूर्व ही नाना साहब के नाम सारी सम्पत्ति और अधिकार वसीयतनामा में लिख चुका था और उसे अपना उत्तराधिकारी भी घोषित कर चुका था, किन्तु बाजीराव के मरने के पश्चात कम्पनी ने नाना साहब को बाजीराव का उत्तराधिकारी मानने से साफ इन्कार कर दिया और आठ लाख की पेन्शन भी तुरन्त बन्द कर दी। नाना साहब के अपील करने पर कम्पनी की ओर से अत्यन्त अपमानपूर्ण शब्दो में उत्तर दिया गया वह यह कि "बाजीराव पेन्शन में से इतना रुपया बचाकर छोड़ गया है कि अब उसके परिवार को किसी पेन्शन की आवश्यकता नहीं है।" इस पर भी नाना साहब हताश न हुये और उन्होंने अपने विश्वासपात्र मित्र श्री अजीमउल्ला को अपील लेकर इङ्गलैंड भेजा। श्री अजीमउल्ला एक गरीब मुसलमान परिवार मे थे किन्तु बड़े राजनीतिज्ञ और बुद्धिमान व्यक्ति थे। हिन्दू मुसलिम एकता का नारा सर्वप्रथम उन्होंने लगाया और नाना साहब के हृदय मे अंग्रेजों के विरुद्ध भावनाये उत्पन्न करने तथा विप्लव का बीज बोने मे उनका विशेष हाथ था। उन्होंने इङ्गलैण्ड से नाना साहब की असफलता के इतने अच्छे और मार्मिक शब्दो में लिखा कि नाना साहब के हृदय में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध लोहा लेने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। अजीमउल्ला ने इङ्गलैण्ड में कई स्थानों का भ्रमण किया और यूरोप की विभिन्न भाषाये सीखी। यही नही वरन् वहाँ वह एक महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञ बन गया और इङ्गलैण्ड की जनता में सर्वप्रिय होगये। अजीमउल्ला निराश होकर भारत लौटे। नाना साहब बाजीराव की मृत्यु के पश्चात बिठूर में रहने लगे थे। अजीमउल्ला ने बिठूर में आकर उस अपमानजनक उत्तर को नानासाहब के सम्मुख इस प्रकार रक्खा कि नाना साहब के हृदय मे यह धारणा बन गई कि बृटिश साम्राज्य से न्याय की आशा ही व्यर्थ है, अतः भारत से बृटिश शासन को किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है इसके उपाय खोजना

चाहिये। उस समय नाना साहब की आयु केवल २८ वर्ष की थी। अजीमउल्ला ने नाना साहब को राय दी कि अंग्रेजो के विरुद्ध विप्लव करने के पूर्व समूचे भारत में पहिले संगठन हो और उस सगठन के लिये हिन्दू मुस्लिम एकता अनिवार्य है। उन्होने नाना साहब को यह भी राय दी कि विप्लव से पहिले अंग्रेजो के साथ शिष्टाचार का बर्ताव रहना चाहिये और कोई बात ऐसी न हो जिससे अंग्रेजों को विप्लव की झलक दिखाई दे। हुआ भी ऐसा ही। नाना साहब की ओर से कम्पनी के अधिकारियों की दावते होती थीं उनको उपहार भेंट किये जाते थे। साथ ही नाना साहब ने बिठूर और कानपुर की जनता को अपने प्रेम तथा उदार हृदय से अपनी ओर आकर्षित कर लिया और वहाँ की जनता के शनैः शनैः हृदय सम्राट बन गये।

उधर १८५३ में झांसी के महाराजा गंगाधर राव का देहान्त हो गया। गंगाधर राव के कोई पुत्र नहीं था। अतः झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने एक दत्तक पुत्र दामोदर को गोद ले लिया, किन्तु कम्पनी सरकार ने रानी का अधिकार नहीं माना और दत्तक पुत्र को राजा का उत्तराधिकारी मानने से साफ इनकार कर दिया।

लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम छबीली था। सन १८४२ में झाँसी के राजा गंगाधर राव का विवाह छबीली के साथ हुआ। छबीली का नाम विवाह के पश्चात लक्ष्मीबाई हुआ। लक्ष्मीबाई बचपन से ही बुद्धिमान, होनहार और वीरांगना थी। वह शस्त्र विद्या मे निपुण और विशेषतया तलवार चलाने और घोड़े की सवारी में झांसी मे अप्रतिबिम्बित थी। बचपन से ही उसे घोड़े की सवारी का शौक था। तलवार चलाने की शिक्षा भी उसने बचपन में प्राप्त की थी। महाराजा गंगाधर राव के जीवन में भी वह प्रायः राज्य की देखभाल करती रहती थी। गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात जब कम्पनी द्वारा झांसी के राज्य को विलीन करने का आदेश लार्ड डलहौजी द्वारा निकाला गया तो रानी के क्रोध

की सीमा न रही, और उसने अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध जनता में विप्लव की आग भड़काने का बीड़ा उठाया। नाना साहब और लक्ष्मी बाई दोनों एक ही नाव पर सवार अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध गुप्त रूप से संगठन करते रहे। सत्य तो यह है कि सन् १८५७ की क्रान्ति के नेता यही दो वीर आत्माये थी। यही नही कि इन्होने अपने राज्य की प्राप्ति के लिये ही क्रान्ति का बीडा उठाया हो वरन् यह भी अनुभव किया कि भारत अंग्रेजो की कूटनीति से सदैव को गुलाम बना जारहा है, अतः यह आवश्यक है कि भारतीय जनता अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये जागे, और समस्त भारत में संगठन हो, हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित हो, सब अपने स्वार्थो को छोड देश को पराधीनता की बेड़ियो से आजाद बनाये। इन भावनाओं के साथ १८५७ की क्रान्ति के लिये मैदान तैयार किया गया। गुप्त संगठन बडे जोरो से देश में खड़ा किया गया। इस संगठन के नेता थे—अजीमउल्ला, नाना साहब, मौलवी अहमदशाह, खान बहादुर खाँ, शोभाराम सक्सेना, बेगम जीनत महल और तात्याटोपे। इन सब मे अजीमउल्ला बडा ही दूरदर्शी तथा राजनीतिज्ञ था, उसने भारत के गुप्त संगठन के अतिरिक्त कुछ विदेशो मे भी गुप्त बात-चीत भारत मे होने वाली क्रान्ति के सहयोग के सम्बन्ध मे की थी। तुर्की के सुल्तान को भी दो पत्र उसने इसी आशय के लिखे थे। इसके अतिरिक्त भारत में जो फ्रांस की बस्तियां थीं उन बस्तियो के कुछ अधिकारियो को भी अजीमउल्ला ने गुप्त पत्र लिखे थे और कुछ गुप्त मैत्री भी की थी।

इसी प्रकार दक्षिणी भारत में श्री रंगू बापू जी द्वारा गुप्त संगठन किया गया और काश्मीर से कन्याकुमारी तक, रंगून से पेशावर तक इस गुप्त संगठन को इतनी बुद्धिमत्ता से चलाया कि अंग्रेजों के कानों को इस बात का पता न चल सका। इस प्रकार इस संगठन के निम्नलिखित नेता तथा अड्डे बनाये गये। उत्तरी भारत मे अजीमउल्ला,

बिहार में कुंवर जगदीश सिंह, दक्षिण भारत मे रंगो बापू जी, आगरा मे मौलवी अहमद शाह, बगाल (कलकत्ते) में अली नकी खाँ तथा लखनऊ में अवध के नवाब, रुहेलखण्ड में खान बहादुर खाँ, शोभाराम तथा बख्त खाँ। इसके अतिरिक्त कुछ संस्थाये भी इस गुप्त सगठन का संचालन कर रही थी जिनमें एक प्रमुख संस्था हैदराबाद मे मुस्लिम जमाअत के नाम से प्रसिद्ध थी। इस संगठन को जिस रूप में और जिस ढग से चलाया जा रहा था वह बडा अद्भुत और चतुरतापूर्ण था। बिना किसी नाम के ऐसी भाषा के पत्र लिखे जाते थे जिनका अर्थ कुछ और होता था। कुछ ऐसी भाषाओं की लिपि निकाली गई थी जिसको केलल इस संगठन के संचालक ही समझ पाते थे। कुछ संगठन कर्त्ता सन्यासी और भिखारी का रूप धारण करके बड़े २ राजमहलो से लेकर सैनिक छावनियो तक जाते और वहाँ उनमे क्रान्ति की भावनायें भरते थे। इस संगठन का प्रभाव सबसे पहले सैनिको पर हुआ और वह इतना प्रबल कि सैनिकों ने अपना अलग गुप्त संगठन बनाया और प्रत्येक संगठन की कार्य-कारिणी को निर्वाचित किया। इन सैनिकों की बैठकें रात को १२ बजे के पश्चात होती और उनमे प्रस्ताव पास किये जाते थे। रात को यह सैनिक नागरिको के भेष मे मुँह ढककर इन सभाओ में जाते थे। नेरेटिव आफ इन्डियन म्यूनिटी पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है—"परेड ग्राउन्ड पर एक दिन १३००० सैनिक एकत्रित हुये उनके सिर मुँह जरा से भाग को छोड़कर ढके हुये थे। और वह व्यक्ति धर्म पर बलिदान होने की बातें कर रहे थे।" इस संगठन का उल्लेख प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक मेलिसन ने इन शब्दो में किया है। "इस संगठन का नेता निःसंदेह मौलवी साहब था। इस सगठन की शाखायें भारत भर में फैली हुई थी। निश्चय आगरे में जहाँ यह मौलवी कभी रहा करता था और ६६ प्रतिशत देहली, मेरठ, पटना एवं कलकत्ते में जहाँ अवध का भूतपूर्व नवाब अपने परिचय के साथ रहा करता था, इस क्रान्ति का

प्रभाव बहुत उग्र था।" कहीं कहीं चपाती भेजकर गुप्त संगठन उभारा जाता था उन रोटियों पर गुप्त चिन्ह अंकित होते थे।

इस क्रान्ति का आरम्भ होने ही वाला था कि क्रान्ति की ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने के हेतु एक हृदय विदारक घटना घटी, काली नदी पर जो युद्ध हुआ था उसमें भारतीय सैनिक सहस्रों की संख्या में घायल हुये थे। अंग्रेजों ने देखा कि उनको अस्पताल ले जाने अथवा उनके लिये कोई नया अस्पताल खोलने में बहुत बड़े धन और सामग्री का प्रश्न है, अतः उन्हे तोपो से उड़वा दिया। इस घटना के उपरान्त कहा जाता है कि एक पत्र अवध के नवाब के नाम भेजा गया था और यह अंग्रेजों के भी हाथ लग गया उसके शब्द इस प्रकार थे। "भाइयों हम स्वयं ही फिरंगी की तलवारें अपने शरीर में भोकते है। हम सब मिलकर उठे तो विजय हमारी है। कलकत्ते से पेशावर तक की भूमि में खुला मैदान होजायेगा।" अहमदशाह एक मौलवी था और वह धर्म की आड़ में विप्लव का प्रचार करता था। लखनऊ और कलकत्ते की मस्जिदों मे कई बार शुक्र को नमाज के पश्चात् उसके क्रान्तिकारी भाषण हुये। एक बार लखनऊ में ईद की नमाज के पश्चात् उसका क्रान्किारी भाषण हुआ और सहस्रों मुसलमानों की जनता को उसने धर्म के नाम पर विप्लव करने का आदेश दिया। दूसरी घटना जिसने इस ज्वाला में घी का काम किया वह थी नई कारतूसों को मुँह से चिकना करना तथा उनमें गाय और सुअर की चर्बी का संदेह। इन कारतूस मे भारतीय सैनिकों मे बड़ी खलबली मच गई और स्वधर्म की भावनायें उत्तेजित हो उठी। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि इन कारतूसों में चर्बी का प्रयोग किया गया था। इसका समर्थन केवल भारत के इतिहास कारों द्वारा ही नही वरन् कई अंग्रेज इतिहास कारो ने भी किया है। फिर भी यदि कोई सैनिक इनका प्रयोग करने से इनकार करता तो उसे समस्त पल्टन के समक्ष कड़ा दण्ड दिया जाता। एक बार एक पूरी

पलटन ने इनका प्रयोग करने से इनकार कर दिया तो समस्त पलटन को दण्ड दिया गया। अतः सन् १८५७ की क्रान्ति को सुलगाने के लिये कारतूसों की आग एक कारण बन गई। और क्रान्ति का श्रीगणेश इन्हीं कारतूसों के नाम से हुआ और इन्ही कारतूसों की आड लेकर नाना साहब, मौलवी अहमद शाह, अली नकी खां, खान बहादुर खां, जीनत महल एवं बहादुर शाह ने क्रान्ति की आग को सैनिकों में भड़काना आरम्भ किया। प्रसिद्ध लेखक मेडली इन शब्दो में कारतूसो द्वारा क्रान्ति की आग लगाने का वर्णन करता है "वास्तव मे चर्बी से चिकने कारतूसो की बात तो बहुत दिनों से कई कारणों में से लगाये गये सुरंगों मे जलाई दियासलाई के समान थी।" एक दूसरा अंग्रेज इतिहासकार इन शब्दों में कारतूसों के सम्बन्ध मे लिखता है "यह तो संदेह के परे की बात है कि कारतूसो का तो बहाना मात्र था जिन कारतूसो की टोपी दांत से तोड़ने पर अपनी जाति को गंवाने के भ्रम का इतना बतगड बन गया था; उन्ही का हमसे लड़ते समय, हमी पर वेही सिपाही खुलकर वेही गोली चलाते कोई हिचकिचाहट भी नही थी।"

सबसे पहले बंगाल की १९वीं पल्टन को इन कारतूसों के प्रयोग करने पर जोर दिया गया, उधर अलीनकी खाँ बंगाल मे मौजूद था और वह इस पल्टन के सैनिको को धर्म के नाम पर क्रान्ति के लिये उत्तेजित कर रहा था। परिणाम यह हुआ कि इस पल्टन ने कारतूसों का प्रयोग करने से साफ २ शब्दो मे इन्कार कर दिया। उस समय तो अंग्रेज खून का सा घूंट पीकार रह गये। क्योंकि उनके पास वहाँ अंग्रेजी सेना न थी किन्तु मार्च के महीने मे अंग्रेजी सेना आते ही यह पल्टन तोड दी गई।

१९ वी पल्टन का टूटना था कि क्रान्ति की चिनगारी का श्रीगणेश वीर मंगल पाण्डे ने किया। मंगल पाण्डे इस कम्पनी का एक सैनिक था। उससे न रहा गया। उसने गुप्त रूप से सैनिकों से विद्रोह करने और

अंग्रेजी सेना का सफाया करने की दुहाई धर्म और देश के नाम पर दी। बारिकपुर में सैनिको को विद्रोह करने के गुप्त संदेश भेजे गये। इसी बीच ३४ वी पल्टन को तोड देने का आदेश दिया। उसके सैनिको मै भी कारतूसों के नाम पर विरोध प्रकट किया जा रहा था। इस आदेश ने सोने पर सुहागे का काम किया। २९ मार्च सन् ५७ को मंगल पाण्डे ने इस क्रान्ति का श्रीगणेश करते हुये खुले आम सैनिकों के बीच भाषण दिया। और पल्टन के साथ परेड पर उसने सैनिको को स्वदेश और स्वधर्म की दुहाई देकर अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह करने की शपथ दिलवाई। उसने अपनी राइफल उठाई और वह सेना के आगे २ नेता बन कर चला। सार्जेन्ट मेजर हूरोज इस पर क्रोधित हो उठा और उसने सैनिको को मंगल पाण्डे को गिरफ्तार करने का आदेश दिया, किन्तु किसी सैनिक ने भी उसके आदेश का पालन नही किया। मगल पाण्डे ने अपनी राइफल तानी और मेजर को इसका निशाना बना दिया। इस प्रकार जितने भी गोरे वहाँ पर थे सबका सफाया बोल दिया गया। किन्तु कर्नल व्हीलर और बहुत से गोरे सैनिक वहाँ आगये। मंगल पाण्डे ने यह देखकर कही वह गिरफ्तार न हो जाय, अपनी राइफल अपने सीने पर तानी और वह घायल होकर वहीं गिर पडा। अंग्रेजी सेना उसे उठाकर ले गई, उस पर मुकदमा चलाया गया और उसे फांसी का दण्ड मिला। कहा जाता है कि बारकपुर मे उसे कोई भी जल्लाद फाँसी पर लटकाने को तैयार न हुआ। श्री विनायक दामोदर सावरकर से अपनी पुस्तक "१८५७ का भारत स्वतन्त्र संग्राम" में उसका उल्लेख निम्न शब्दो में किया है। "समूचे वारिक में मगल पाण्डे को एक भी जल्लाद न मिला। आखिर उस हीन कार्य को करने के लिये कलकत्ते से चार जल्लाद बुलाये गये। ८ अप्रैल १८५७ सबेरे ही सैनिकों के संरक्षण के साथ उन्हें फांसी के तख्त पर पहुँचाया गया।" मंगल पाण्डे तो फाँसी पर चढ़ गया किन्तु उसकी आत्मा भारत की जनता और विशेषतया सैनिको में क्रान्ति के अंकुर जमाकर छोड़ गई।"

क्रान्ति का विस्फोट

मंगल पाण्डे को फाँसी, १९वीं तथा चौदहवीं पल्टन का टूटना—ये तत्कालिक क्रान्ति को भड़काने वाली दो ऐसी हृदय विदारक घटनायें घटी कि भारतीय सैनिको मे विद्रोह की ज्वाला फूट निकली' और उनके हृदय मे क्रान्ति का जोश उमड उठा ! नाना साहब को इससे अच्छा सुनहरा अवसर क्या मिल सकता था। उन्होंने अपने गुप्त संगठन एवं सहयोगियो द्वारा प्रत्येक नगर मे क्रान्ति का संदेश भेजकर यह इच्छा प्रकट की कि ३१ मई सन १८५७ को समस्त देश में एक साथ क्रान्ति हो, और अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह किया जाय। किन्तु ३१ मई से पूर्व ही इसका श्रीगणेश मेरठ मे हुआ। ६ मई को मेरठ की एक समस्त घुडसवार सेना ने इन कारतूसो का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। इस पर ८ मई को ५० सिपाहियों को ८ से १० वर्ष तक कड़ा दण्ड का निर्णय सुनाया गया और ९ मई को इन सिपाहियों को सारी सेना के सामने निहत्था और हथकड़ी बेड़ी डालकर दुखित किया गया। इस घटना ने क्रान्ति की दहकती हुई अग्नि में घृत का कार्य किया, तथा ३१ मई के स्थान पर क्रान्ति की आग १० मई को ही भड़क उठी। परिणाम यह हुआ कि मेरठ के सैनिको ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। सर्वपूर्व उन्होंने कारागारो को तोड़ा और कैदियो को छुड़ाकर आगे कूच किया। थोड़ी ही देर में समस्त मेरठ मे क्रान्ति की ज्वाला प्रचण्ड हो उठी। बहुत से अंग्रेज सैनिक तथा अधिकारी क्रान्तिकारियों द्वारा मारे गये और बहुत से जान बचाकर भाग गये। मेरठ का कमिश्नर किसी प्रकार भाग गया किन्तु फिर भी क्रान्तिकारियों द्वारा उसका (घर) जलाकर राख कर दिया गया।

सचेत होने का अवसर प्राप्त होगया था। यदि कहीं एक ही साथ समस्त भारत मे विद्रोह होता तो प्रायः अंग्रेजो को यह अवसर कभी प्राप्त न न होता और जिस उद्देश्य से भारत के देश भक्तो ने इस अग्नि को प्रचण्ड किया था, वह पूरा हो जाता। प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक मेसिलन भी इस कथन का समर्थन इन शब्दों मे करता है, "इतनी बात पक्की है कि यदि समस्त भारत एकाएक विद्रोह में कूद पड़ता तो अंग्रेजों में से, जो बेखबर थे, इस बेखबर और शीघ्रतापूर्ण संहार से बहुत थोड़े व्यक्ति बचते। फिर तो ब्रिटिश राज्य को फिर से भारत को जीतना बड़ा कठिन हो जाता और हमें पूर्वी साम्राज्य के लिये सदैव के लिये काला दाग माथे पर लगा लेना पड़ता।" प्रसिद्ध इतिहासकार श्री व्हाइट ने भी इसी प्रकार इस कथन की पुष्टि की हैं। वह लिखता है—"मेरठ के विद्रोह ने हमें एक बड़ा लाभ अवश्य पहुँचाया, वह यह कि समूचे भारत के विद्रोह का निश्चित कार्यक्रम ३१ मई को था जहाँ इस सुअवसर के उत्थान ने समय पर जागृत किया।"

दिल्ली के बहादुर शाह और जीनत महल ३१ मई को क्रान्ति के विस्फोट की मन्त्रणा कर रहे थे। किन्तु मेरठ के इस विद्रोह का समाचार बादशाह बहादुरशाह को दूसरे दिन मिल गया। बहादुरशाह और जीनत महल ने दिल्ली में इस विद्रोह को होने से रोका। किन्तु क्रान्ति का रुक सकना पूर्णरूपेण असम्भव था। मेरठ की क्रान्तिकारी सेनाओं ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और यमुना नदी को पार करके कुछ ही घन्टो में अंग्रेजी हुकूमत बरबाद' और शहनशाह जिन्दाबाद' के नारे लगाती हुई दिल्ली के समीप पहुँच गई। अंग्रेजी सेना अध्यक्ष कर्नल रिप्ले था। उसने परेड ग्राउन्ड में हिन्दू मुसलमान सैनिको को एकत्रित करके अंग्रेजी राज्य के प्रति वफादारी रखने पर भाषण दिया। इतने पर ही मेरठ की सेनायें आ धमकी और उन्होंने इन सेनाओ से मिलकर अंग्रेजो का सफाया बोल दिया। कश्मीरी दरवाजा को खोलकर क्रान्तिकारी सैनिक

'बहादुरशाह जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुये दिल्ली पहुँचे। महल में अंग्रेज कमिश्नर श्री फ्रेजर भी था! क्रान्तिकारियों ने उसका कत्ल कर दिया। ३१ मई से पहले ही क्रान्ति की ज्वाला बड़े वेग से जल उठी। बेगम जीनत महल और बहादुरशाह तथा बाहर के क्रान्तिकारियो ने मन्त्रणा करके भविष्य का कार्यक्रम निश्चित किया। दिल्ली मे गोला बारूद का बड़ा कारखाना था, क्रान्तिकारी उसे लेना चाहते थे, किन्तु अग्रेज सिपाहियो ने उसमें आग लगा दी जिसके विस्फोट से सहस्त्रो भारतीय सैनिक मारे गये। १५ मई को समस्त दिल्ली और दिल्ली के आस पास अंग्रेजो को या तो बन्दी बना लिया गया था या उन्हे कत्ल कर दिया गया। इस प्रकार समस्त दिल्ली पर क्रान्तिकारियो का अधिपत्य हो गया। उन्होने बहादुरशाह को दिल्ली की गद्दी पर बड़ी धूम धाम से बिठाया और भारत का सम्राट घोषित कर दिया।

दिल्ली की इस क्रान्ति में एक बात स्मरणीय है और वह कि भारतीय सैनिको और क्रान्तिकारियो ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आदर्शों का उदाहरण स्थापित करते हुये किसी अग्रेज महिला के साथ बलात्कार या दुर्व्यवहार की घटना नहीं होने दी। जहाँ इतने अंग्रेज हताहत हुये वहाँ एक भी अग्रेज महिला का कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है जिससे उसके सम्मान का हनन हुआ हो। इसकी सराहना सर विलियम मूर ने भी की है, और उसकी पुष्टि उस जाँच कमेटी ने भी की है जो उस विद्रोह के सम्बन्ध में नियुक्त की गई थी। विलियम मूर ने इन शब्दों के साथ इस समिति की रिपोर्ट का उल्लेख किया है। "चाहे कितनी ही क्रूरता और रक्तपात हो गया हो। बाद मे जो किस्से होने की बात फैलाई गई कि स्त्रियों से छेड़ छाड़ हुई, उनकी आबरू लूटी गई, मैंने जाने कहाँ तक तहकीकात की है इसके सच्चे होने का कोई भी प्रमाण न मिला।"

दिल्ली के पश्चात पंजाब में क्रान्ति की ज्वाला उमडी। किन्तु अंग्रेजो ने यहां इस ज्वाला को शान्त करने के लिये जो पाशविक अत्याचार किये, उन्हे सुनकर हृदय कांप उठता है। इसकी एक झलक 'हिस्ट्री आफ सीज आफ डेल्ही' के पृष्ठो मे मिलती है।

"सैनिक पचायत के आसन पर बैठने से पहले पंच शपथ करते थे कि अपराधी को निर्दोष होने की परवाह न करते हुये बन्दी को फांसी की सजा देंगे। .... चटपट निर्णय के बाद फांसी पर जाने वाले बन्दियो को खिजाया जाता और अनाडी औजारो से यन्त्रणा दी जाती, जहां पढे लिखे अफसर तमाशा देखते और उससे रस लेते।" ये शब्द 'हिस्ट्री आफ दि सीपॉय वार' मे सर होम्स ने लिखे हैं।

३० मई को हिन्दन नदी पर अंग्रेजी और क्रान्तिकारी सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। अंग्रेजो के साथ सिक्ख और गोरखा भी थे।

पंजाब के अतिरिक्त अलीगढ़ और मैनपुरी मे भी यह आग फैल गई और २२ मई को अलीगढ़ पूर्णतया स्वतन्त्र होगया। श्री ओट्रोम जो वहाँ के जिलाधीश थे, अपने साथी गोरो को लेकर रात में अलीगढ से भाग गये। इसके पश्चात मैनपुरी इटावा तथा आस पास का समस्त क्षेत्र क्रान्तिकारियों के हाथ आ गया। इस क्षेत्र में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी राजनाथ सिंह ने क्रान्ति की सेनाओ का नेतृत्व किया था। दूसरे प्रकार काशी और प्रयाग में भी क्रान्ति की ज्वाला धधक उठी। काशी में अंग्रेजों की सैंतीसवीं सेना थी। इसके अतिरिक्त कुछ सिक्ख पल्टन पंजाब में बुलाई गई थी। किन्तु यहाँ पर गुप्त संगठन इतने जोरो पर चल रहा था कि कभी कभी मन्दिरो में रात भर मंत्रणा होती रहती थी। यहा के कर्मचारी टेकर कमिश्नर और गिबन्स जिलाधीश दोनो ने बड़ी चतुरता से सैना के अन्दर अन्दर अपने दूत लगा रक्खे थे, ताकि यदि कोई गड़बड़ी हो तो इसका पता पहले ही चल जाये। इसक

परिणाम यह हुआ कि ३१ मई तक यहां कोई दुर्घटना नहीं हुई। किन्तु ३ जून १८५७ को एक साथ बनारस से ५० मील की दूरी पर आजमगढ़ मे क्रान्ति का विस्फोट हुआ और यह इतना भयंकर विस्फोट था कि रात ही रात में अंग्रेजों को भागना पड़ गया।

इस क्रान्ति का समाचार फैलते ही ४ जून को बनारस में भी क्रान्ति की ज्वाला जल उठी, और ५ जून को मिर्जापुर मे क्रान्ति की लपटें उठने लगीं। बनारस मे क्रान्ति का उल्लेख 'रेड पेम्फलेट' नामक पुस्तक मे इस प्रकार किया गया है, "बनारस में विद्रोह होने की बात जिले में फैली नही कि सारा जिला एक साथ जल उठा। आस पास के स्थानो से यातायात के मार्ग तोड दिये गये, तार तोड दिये गये, रेल उखाडी गई। मालूम होता था कि सिपाहियों से जो काम पूरा न हो सका उसे सफल कर दिखाने की चेष्टा जनता और जमीदार मिलकर कर रहे हैं।"

बनारस के विद्रोह के पश्चात, जनरल नील ने एक अंग्रेजों और सिक्खो की मिली जुली सेना बुलाई, इस सेना में बनारस और उसके पास जिस निर्दयता से क्रान्ति दबाने का प्रयत्न किया उसे लिखते हुये हृदय कांप उठता है। श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक मे में इस सेना के कारनामों का उल्लेख इस प्रकार किया है, "बनारस के विद्रोह के बाद आस पास के देहातो में शान्ति रखने के लिये जनरल नील ने अंग्रेजो और सिक्खों को मिलाकर एक सेना विभाग बनाया। इन सैनिको की टोलियाँ असहाय तथा निहत्थे गावो मे घुसती और जो भी मिले उसे या तो तलवारों के घाट उतारा जाता या फांसी पर लटका दिया जाता। फांसी पर जाने वाले इन अभागो की संख्या इतनी अधिक बढ़ी कि रात दिन चालू रहने पर भी एक वध स्तम्भ से काम पूरा न होता था, तब फांसी के स्तम्भों की एक पंक्ति खड़ी कर दी गई। इन पर अधमरो को पटककर फेंक ही दिया

जाता, फिर भी मरने वालों की संख्या घटती ही न थी। पेड़ काटकर उसके वध स्तम्भ की बेवकूफी की कल्पना को बेकार मानकर अंग्रेजों ने पेड़ों को ही वध स्तम्भ बना डाला। अरे हाँ, एक पेड़ में एक ही आदमी लटकाया जाय तो फिर करतार ने पेड़ों की डाले क्यों पैदा की। तब डाल डाल से रस्से से गर्दन कसे हुये काले आदमियों की लाशें हर पेड़ पर लटकती दीख पड़ती थी। इस सैनिक कर्तव्य तथा ईसाई धर्म के प्रकार का कार्य दिन रात चालू ही रहता था।"

इस कथन की पुष्टि 'हिस्ट्री आफ दि इन्डिया म्यूटिनी' के इतिहासकार श्री के० तथा मेसिलन ने इस प्रकार की है—"फांसी देने वाले स्वयं सेवकों की टोलियां जिलो में जाती थीं जहां शौकीन जल्लादों की कमी न होती थी। एक महाशय शेखी बघारते थे कि उन्होने जितनों को भी लटकाया, कलात्मक ढग से लटकाया। आम के पेड की टिकटी और हाथ की पटरी बनाकर इस जंगली न्याय के शिकारी को दिल बहलाव के लिये ८ के आकार मे टागा जाता।"

इस प्रकार 'इन्डियन म्यूटिनी' के लेखक चार्ल्स बाल ने उन घटनाओं का उल्लेख एक स्थान पर इन शब्दों में किया है, "हम आदमियो से भरे गाँव को जला देते, चारों ओर से घेर कर हम बैठ जाते, और जब कोई देहाती चीखता चिल्लाता आग की लपटों से बाहर आता तो उसे हम गोलियो से छलनी बना देते।"

सिक्खो की पल्टन को इलाहाबाद भेजा गया कि वहाँ पर वह क्रान्तिकारियो के विद्रोह को दबायें। ४०० सिक्खो की सेना इलाहाबाद पहुँची। १७ जून को इलाहाबाद का खजाना लूटा गया और १०,००० रुपये क्रान्तिकारियो के हाथ लगे। इलाहाबाद की इस क्रान्ति मे सेना के अतिरिक्त सहस्रो किसान क्रान्ति के सैनिक बने हुये थे। हिन्दू मुसलमान, किसान जमींदार सभी क्रान्ति में भाग ले रहे थे। इलाहाबाद के समीप कानपुर में पूरे क्षेत्र से विद्रोह फूट निकला, किन्तु वहाँ इ

विद्रोह को दबाने के हेतु जो अत्याचार अंग्रेजों ने किये उनका कोई भी उदाहरण प्रायः संसार के इतिहास मे नही मिल सकता। इन अत्याचारो मे पंजाब के सिक्ख सिपाहियों ने भी दिल खोलकर भाग लिया। कानपुर मे नाना साहब विद्रोह आरम्भ होने से पूर्व ही गुप्त संस्थाओ के संचालन के हेतु समस्त उत्तरी भारत की यात्रा कर रहे थे। नाना साहब का अन्तिम मित्र तातियाटोपे इस कार्य मे नाना साहब का सीधा हाथ बना हुआ था। १५ मई को ही मेरठ की क्रान्ति के समाचार कानपुर में फैल गये थे। अतः नाना साहब के जो गुप्तचर दिल्ली और मेरठ मे लगे हुये थे वे समाचार लाते और ले जाते। बिठूर और कानपुर दोनो स्थानो में नाना साहब के आदेश से गुप्त मंत्रणा होती थी। इतिहासकारो का कहना है कि इस गुप्त मन्त्रणा के स्थान दो थे, एक सूबेदार टिक्कम सिंह का मकान तथा दूसरा शमशउद्दीन खाँ का मकान। जब नाना साहब उत्तरी भारत की यात्रा कर रहे थे तो उन्होने अपने दो विश्वासपात्र सैनिको ज्वाला प्रसाद और मुहम्मद अली को अपने प्रतिनिधि के रूप मे इस मन्त्रणा में भाग लेने को नियुक्त रक्खा था। कानपुर में यह अफवाह बडी गर्म थी कि २४ मई को ईद के दिन ईद की नमाज के बाद विद्रोह होगा। इस समाचार से अंग्रेजो को बडा भय था और उन्होने काफी पेशबन्दी की। किन्तु ईद वाले दिन कोई झगडा या विद्रोह नही हुआ। यहाँ तक कि ३१ मई को जो क्रान्ति का निश्चित दिन था उस दिन भी कानपुर में पूर्ण शान्ति रही। और १ जून को व्हीलर ने भारत के अग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग को यह संदेश भेज दिया कि 'अब कानपुर में कोई विद्रोह की संभावना नही। यहाँ पूर्ण शान्ति है।

३ जून को आधी रात में कानपुर मे विद्रोह की आग भड़क उठी और अंग्रेजो के गोला बारूद पर क्रान्तिकारियो ने अपना अधिकार कर

लिया। सूबेदार टिक्कम सिंह की पैदल सेना नाना साहब का जय जयकार करती हुई क्रान्ति की सेना मे तबदील होगई।

थोडे ही समय में कानपुर मे नाना साहब का अधिकार हो गया। नाना साहब ने बड़ी बुद्धिमत्ता से राज्य का संचालन किया। अजीम उल्ला और ज्वाला प्रसाद न्यायाध्यक्ष चुने गये। कहा जाता है कि बहादुरशाह का फरमान पढकर सुनाया गया जिसमे गौहत्या करने वाले को फाँसी का दण्ड और चोरी करने वाले को अंग हीन करने की घोषणा की गई। श्री थामस ने इस कथन की पुष्टि इस प्रकार की है, "एक चोरी के अपराध में एक अपराधी का दाहिना हाथ काटा गया। गौ हत्या करने वाले एक व्यक्ति को भी यही दण्ड दिया गया।"

अवध की क्रान्ति एक नये ढग से प्रारम्भ हुई। यहां का अंग्रेज अधिकारी लारेन्स बडा चतुर एवं दूरदर्शी था। उसने कुछ जमीदारों की सहायता से एक बडा दरबार किया जिसमें अवध के समस्त प्रभावशाली व्यक्तियों को आमन्त्रित किया। उस दरबार में बहुतो को बडी बड़ी उपाधियां प्रदान की गई और इन सब का बडा सम्मान किया गया। किन्तु क्रान्ति के पीछे जो स्वदेश प्रेम की भावनाएँ थी, वे कब रुक सकती थी। २ जून को सैनिकों में एक साथ यह अफवाह गर्म हुई कि उन्हे जो आटा खाने को मिलता है उसमें हड्डियों का चूरा मिला होता है। अतः आटे की थैलियां सिपाहियो ने गोमती में फेंक दी और तीसरी जून को एक साथ बदले की आग भड़क उठी। सबसे पहले क्रान्तिकारियों ने यह कार्य किया कि कोष पर अपना अधिकार जमा लिया। साथ ही वहाँ के कमिश्नर और अंग्रेज अधिकारियों को कत्ल कर दिया गया। अवध के पास फर्रुखाबाद में भी विद्रोह हुआ और वहां के नवाब तफज्जुल हुसेन खाँ को क्रान्तिकारियो ने गद्दी पर बिठालकर अपना नेता बना लिया।

इधर फैजाबाद मे मौलवी अहमदशाह क्रान्ति के बीज अन्दर ही अन्दर बो रहे थे। अब इससे अच्छा और कौनसा अवसर उन्हें हाथ

जाता। अंग्रेजों ने मौलवी को ही सर्वप्रथम बन्दी बनाया और उन्हें फाँसी का दण्ड सुनाया गया। मौलवी साहब का गिरफ्तार होना था कि फैजाबाद में क्रान्ति और विद्रोह की ज्वालाएँ फूट निकली। क्रान्तिकारियों ने सबसे पहले अपने प्रिय नेता मौलवी अहमदशाह को बन्दीगृह से छुडाकर उन्हे अपनी क्रान्ति का नेता घोषित किया। १० जून तक सारा अवध क्रान्तिकारितो के हाथ आगया।

अतः लखनऊ की गद्दी पर वाजिदअलीशाह के नाबालिग सुपुत्र श्री विरजिस कादिर को बिठा गया क्योंकि नवाब वाजिदअलीशाह तो उन दिनो कलकत्ते में अंग्रेजों के बन्दी बने पड़े थे। श्री कादिर के नाबालिग होने के कारण उनके राज्य का भार उसकी माता हजरत महल सम्हालती थी। १८५७ की क्रान्ति का यह भी एक विशेष महत्व है कि इस क्रान्ति मे दिल्ली और लखनऊ के दोनों महत्वपूर्ण राज्यो का सचालन दो महिलाये जीनत महल और हजरत महल कर रही थी। जीनत महल बहादुरशाह के बूढ़े होने के कारण दिल्ली के राज्य का सचालन और साथ ही क्रान्ति का संगठन कर रही थी। और हजरत महल अपने पुत्र के नाबालिग होने के कारण अवध मे राज्य-कार्यो का संचालन और क्रान्ति का संगठन कर रही थी।

कहा जाता है कि लखनऊ में केवल रेजीमेंट सी० में ८७ दिन तक युद्ध होता रहा। इस युद्ध मे ४०० के लगभग अग्रेज और लगभग ३०० हिन्दुस्तानी सैनिक काम आये।

इधर झांसी मे क्रान्ति की तैयारी बड़े जोरो से हो रही थी। रानी लक्ष्मीबाई क्रान्ति और सैनिक संगठन मे इतनी चतुर एवं निपुण थी कि अंग्रेजो को कानो कान इस संगठन का पता न चला। रानी का एक बडा ही विश्वासपात्र व्यक्ति लक्ष्मण राव उस क्रान्ति के संगठन के हेतु नियुक्त किया गया था। वह पूजा-पाठ और कथा आदि के बहाने प्रत्येक अमीर, गरीब, सैनिक तथा अधिकारी के घर में जाता था और

क्रान्ति की भावनाओं का प्रचार करता था। ३१ मई को, जो क्रान्ति का नियत दिन था, झांसी में पूर्ण शान्ति रही। दूसरे और तीसरे दिन भी कोई विशेष घटना नहीं हुई, किन्तु ४ जून को अकस्मात् क्रान्ति की ज्वाला झांसी में इतने वेग से प्रज्ज्वलित हुई कि अंग्रेज चकित रह गये। झांसी के किले पर क्रान्तिकारियों ने अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। झांसी के अंग्रेजी शासन के भारतीय मुहम्मद हुसेन तथा झाँसी के तहसीलदार क्रान्तिकारियों में सम्मिलित होगये और साथ ही रिसालेदार काले खां, जो झांसी में अंग्रेजी सेना की भारतीय सेना वाली टुकडी में नियुक्त थे, अपनी समस्त भारतीय सेना के साथ क्रान्तिकारियों में आ मिले।

८ जून को झाँसी में महारानी लक्ष्मीबाई को रानी घोषित करने तथा अंग्रेजी राज्य की समाप्ति की घोषणा करने के लिये एक जुलूस निकाला गया, जिसमें समस्त अंग्रेज अफसरों को वन्दी बनाकर घुमाया ताकि सारी जनता को पता लग जाय कि ब्रिटिश शासन झाँसी में समाप्त होगया।

रुहेलखंड का नेतृत्व

वास्तव में १८५७ की क्रान्ति में रुहेलखण्ड ने जो योग दिया उसका महत्व सबसे अधिक है। यदि इस क्रान्ति की ज्वाला भड़काने का श्रेय नाना साहब, अहमदशाह, रानी लक्ष्मी बाईको है तो इस क्रान्ति के सैनिक संगठन और संचालन का श्रेय रुहेलखण्ड के सेनापति बख्त खां को है। बख्त खाँ ने जिस योग्यता से क्रान्ति की सेनाओं का संगठन किया उसी से प्रभावित होकर बहादुरशाह और नाना साहब ने बख्त खां को दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना के संगठन का कार्य सौंपा था।

रुहेलखण्ड में पहले रुहेलो का राज्य था और इसकी राजधानी बरेली थी परन्तु अवसर के चतुर पारखी अंग्रेजो ने रुहेलो के राज्य को हड़प लिया और रुहेलखण्ड को ईस्ट इन्डिया कम्पनी के शासन में मिला लिया गया। क्रान्ति के समय स्वाधीन रुहेलो का प्रसिद्ध सरदार हाफिज रहमत खा के वंश के एक व्यक्ति खान बहादुर खाँ अंग्रेजी शासन में इस प्रदेश के मजिस्ट्रेट थे। यही व्यक्ति रुहेलखण्ड मे स्थापित क्रान्ति के गुप्त संगठन के नेता भी थे। खान बहादुर खां के एक अभिन्न मित्र थे जिनका नाम शोभाराम था। शोभाराम की सहायता से रुहेलखण्ड मे क्रान्ति का प्रचार करने के लिये गुप्तचर इधर उधर भेजे गये और क्रान्ति के संचालन का कार्य प्रारम्भ किया गया।

रुहेलखण्ड मे भी अप्रेल के महीने से ही कारतूसों की समस्या यहाँ के हिन्दी सैनिको में विद्रोह की आग भड़का रही थी। बरेली में इस समय आठवीं पलटन थी। ब्रिगेडियर सिब्बाल्ड इस सेना का सेनानायक था। बरेली के निकट मेरठ तथा दिल्ली से विद्रोह के समाचार बराबर मिल रहे थे। अंग्रेज सैनिक बड़े भयभीत थे, परन्तु वे यह सुराग लगाने मे असमर्थ रहे कि इन समाचारों का स्रोत कहाँ

था। खान बहादुर खाँ तथा शोभाराम दोनो को ही अंग्रेजी शासन का अनन्य भक्त समझा जाता था। इस कारण उन पर सन्देह करने का कोई प्रश्न ही न था।

१५ मई को बरेली की सारी भारतीय देशी सेना को बरेली छावनी मे बुलाया गया और उनसे अंग्रेजी शासन के प्रति वफादार होने की शपथ ली गई। साथ ही अंग्रेजी सेनापति द्वारा यह आश्वासन भी दिया गया कि भविष्य मे मुँह से चिकना करने वाले समस्त कारतूसो का प्रयोग बन्द कर दिया जायेगा। किन्तु थोड़े ही समय पश्चात दिल्ली दरबार का एक सदेश बरेली आया। "भारतीय स्वतन्त्रता समर" के लेखक श्री विनायक दामोदर सावरकर ने इस सदेश को इन शब्दो मे लिखा है—

"दिल्ली के सिपहसालार का बरेली के सेनापति को अन्तःकरण पूर्वक प्रेमालिंगन।

भाई साहब, दिल्ली में अंग्रेजो के साथ युद्ध जारी है। परमात्मा की कृपा से पहली चोट मे हमने हार दी। जितने बाद में दस बार हारने पर भी न होते उतने पस्त हिम्मत हम उन्हे कर सकते हैं। दिल्ली तो स्वदेश और स्वाधीनता के लिये जूझने वाले राष्ट्रवीरों का तीर्थ बन गया हैं। ऐसे समय मे आप यदि वहाँ खाना खाते हों तो हाथ धोने को यहाँ पहुँचिये। दिल्ली के शाहन्शाह सम्राट आपका स्वागत कर आप की सेवा की पूरी कद्र करेंगे। आपकी तोपों के धड़ाके सुनने के लिये हमारे कान और आप के दर्शन को हमारे नयन बहुत प्यासे हैं। चलिये, रवाना हो जाइये, क्योंकि, भाई साहब, बसंत आने पर गुलाब का पौदा क्योंकर फूल सकेगा। बिना दूध के बच्चा कैसे जियेगा।"

यह संदेश खान बहादुर खाँ के पास पहुँचा। खान ने शोभाराम और बरेली के कुछ सैय्यदों से मंत्रणा की। इसी बीच मेरठ के कुछ क्रांतिकारी सैनिक यहाँ पर आ छिपे और उन्होने सैनिको मे विद्रोह

की आग भड़काना आरम्भ की। खान बहादुर खां और शोभाराम दोनो इस पर एक मत थे कि ३१ जुलाई से पूर्व कुछ न किया जाय। गुप्तचरो द्वारा शोभाराम ने देशी सैनिको के सूबेदार बख्त खाँ के पास यह सन्देश भेजा कि ३१ मई तक शान्ति भंग न की जाय और न कोई उपद्रव किया जाय, वरन् ३१ मई को एक साथ समूचे रुहेलखण्ड मे क्रान्ति का विस्फोट हो। ऐसा ही हुआ, यद्यपि २९ मई को दोपहर को बरेली नगर में यह बात बड़े जोरो से फैली कि आज प्रातःकाल नकटिया नदी पर नहाने के पश्चात देशी सैनिको ने प्रतिज्ञा की है कि आज दो बजे तक समस्त गोरो की हत्या कर दी जायेगी। परन्तु २९ और ३० मई को देशी सेना ने अपना व्यवहार अंग्रेज अधिकारियो के प्रति इतना स्वामी-भक्ति पूर्ण रक्खा कि ऐसा प्रतीत होता था कि रुहेलखण्ड के सैनिक अपने अंग्रेज शासकों के पक्के वफादार हैं।

३० मई की रात को खान बहादुर खाँ और शोभाराम ने सूबेदार बख्त खां के पास अपना संदेश भेजा। सूबेदार ने संदेश वाहक के हाथ उत्तर भेजा। उत्तर पाते ही खान बहादुर खां और शोभाराम ने मन्त्रणा की और क्रान्ति के संगठन और संचालन का कार्य बख्त खा के जिम्मे किया। परिणाम यह हुआ कि ३१ मई को सूर्य निकलने से पूर्व ही कैप्टेन ब्राउन के बगले में आग लगा दी गई। किसने आग लगाई अथवा किसके द्वारा आग लगी, इसका पता किसी को न चला। सेना ११ बजे तक शान्त रही।

दिन के दस बजे सूबेदार बख्त खां ने अपने सैनिको से मन्त्रणा की और उसी दिन ठीक ११ बजे बन्दूको की गड़गड़ाहट से रुहेलखण्ड में क्रान्ति का श्री गणेश होगया। वास्तव में रुहेलखण्ड मे क्रान्ति का संचालन जिस कुशलता तथा बुद्धिमत्ता से किया गया और जिस प्रकार अनुशासन रक्खा गया, यदि समस्त भारत में उसी प्रकार समयानुकूल कार्य होता तो इस क्रान्ति का परिणाम कुछ और ही होता। इस सारे

चालन एवं संगठन का श्रेय रुहेलखण्ड की क्रान्ति के तं
—खान बहादुर खां, शोभराम और बख्त खां। इस
गठन द्वारा क्रान्ति करने का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटे
हले ही मुठभेड़ में मारा गया। उसके मारे जाने के व
धिकारियों के छक्के छूट गये और ६ घन्टे के भीतर
डे अंग्रेजी सैनिक अधिकारी सार्जेन्ट वाल्टेन, कन
ाबर्टसन आदि क्रान्तिकारियों द्वारा मौत के घाट उतार
रेली पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया।

३१ मई को चार बजे ही प्रतिष्ठित हिन्दू तथा म
ान बहादुर खां के मकान मुहल्ला शाहबाद में अमा
न्होंने यह निश्चय किया कि खान बहादुर खां क
निकाला जाए ताकि जनता को ज्ञात हो जाय कि खा
हेलखण्ड के नवाब बन गये और अंग्रेजी शासन का
न समय तीन प्रमुख दल अपने नेताओं के साथ खान
[illegible] स्थान पर थे। एक दल हिन्दुओं का था
• शोभाराम, दूसरा दल नीम[illegible] के सैय्यदों का
मुगली सैय्यद अहमद [illegible] दल सैनिकों का था
देदार बख्त खां, इनके अतिरिक्त कुछ और भी प्रमुख
उपस्थित थे जिनमें पंडित [illegible]नाथ, दीवान मूलचन्द,
हम्मद अमीन खां, श्री चिरागअली, श्री मुहम्मद शाह,
फ्ती अजमल, श्री भोलानाथ, भुवन सहाय तथा कबीर
न सब महानुभावों ने एक मत होकर खान बहादुर
िकालने का प्रबन्ध किया। उधर एक व्यक्ति मुबारक
ी व्यक्तियों के साथ कोतवाली की ओर जलूस के रूप
वयं रुहेलखन्ड के नवाब बनने का स्वप्न देख रहा था।
बारिकशाह ने खान बहादुर खां का विशाल जलूस
ो उसके होश उड़ गये खान बहादुर खां के जलूस में हि

सैनिक तथा नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति हजारों की सख्या मे सम्मिलित थे। मुबारक शाह यह देखकर खान बहादुर खां के जलूस के पीछे हो लिया और अपने अनुयाइयों को सलाह दी कि खान बहादुर खा जिन्दाबाद के नारे लगायें। अतः आकाश खान बहादुर खां जिन्दाबाद के नारो से गूंजने लगा और मुबारिकशाह खान बहादुर खा की शरण मे आगया।

नाना साहब और बहादुर शाह दोनों ने मिलकर रुहेलों के वंश के खान बहादुर खां को रुहेलखण्ड का नवाब स्वीकार किया। नवाब खां ने गद्दी पर बैठते ही शोभाराम को अपना मंत्री तथा वख्त खां को सेनापति नियुक्त किया। जब वख्त खॉ ने सेना की बागडोर सँभाली तो वह ब्रिगेडियर सिव्वल्ड की गाड़ी मे सवार होकर और अपने दूसरे सैनिक साथियों को साथ लेकर समस्त बरेली नगर मे घूमा तथा जनता को खान बहादुर के गद्दी पर बैठने का समाचार सुनाया। जनता ने हर्ष ध्वनि के साथ यह समाचार सुना। यह बात चार्ल्स बाल ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इन्डियन म्यूटिनी' मे लिखा है। उसने इस पुस्तक मे रुहेलखण्ड के इस स्वतन्त्रता समारोह का वर्णन अत्यन्त रोचक शब्दों में किया है। वह वख्त खाँ के सेनापति बनाये जाने के समय का वर्णन करते हुये लिखता है, "यूनियन जैक को खींचकर स्वतन्त्रता का झंडा जब बरेली में चढ़ाया गया तब तोपखाने के सूबेदार बख्त खाँ ने सेना का अधिपत्य स्वीकार किया।"

इस समय बरेली में अलेक्जेण्डर कमिश्नर था और यहाँ का ज़िलाधीश था जे गुठरी, जज का नाम था रावरटसन और सेसन जज था जी० डी० रेक्स। अंग्रेजों की पैदल सेना का सेनानायक गाउन था, यह क्रान्ति होते ही शाहजहाँपुर की ओर भाग गया था, और खेड़ा बभेड़ा पहुँचकर इसने एक राजपूत के यहाँ शरण ली थी। कुछ अंग्रेज सिरोही की ओर भाग गये और वहाँ के ठाकुर छेदासिंह ने

उनको शरण दी। बैजनाथ जो एक बैंकर था उसने भी अंग्रेजों को सहायता दी किन्तु खान बहादुर खां को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने ५८०००) उससे छीन लिया। साथ ही एक लाख इकतालिस हजार रुपया शाही के तहसीलदार ने जो कम्पनी सरकार के नाम पर मालगुजारी का रुपया वसूल किया था खान बहादुर खां के कदमों पर लाकर रख दिया।

खान बहादुर खाँ ने गद्दी पर बैठते ही सबसे प्रथम दो कार्य किये। पहला कार्य यह कि सेना का संगठन बड़े सुचारु ढंग से बख्त खाँ की देखरेख मे और दूसरा कार्य उन अग्रेजो के मुकदमो का निर्णय करना जो क्रान्ति को दबाने के मुजरिम थे। इन अभियुक्तो में बरेली का कमिश्नर, बरेली कालेज का अग्रेज प्रिंसिपल, बरेली का सेसन जज तथा कई अन्य मुख्य अग्रेज सैनिक अधिकारी सम्मिलित थे। खान बहादुर खाँ ने अपने प्रधानमन्त्री (वजीर) दीवान शोभाराम को आज्ञा दी कि इन अभियुक्तों के मुकदमे के निर्णय के लिये एक ज्यूरी बुलाई जाय जो इनके अपराधो की जाँच कर इन्हे दण्ड दे। शोभाराम ने इस आज्ञानुसार ज्यूरी का आयोजन किया। उसका सभापति स्वयं खान बहादुर खाँ था क्योंकि वह कानून का पडित तथा न्याय करने मे चतुर था। शोभाराम उस ज्यूरी का मन्त्री था। इस ज्यूरी ने एक मत होकर सब अभियुक्तो को फाँसी का दण्ड दिया।

खान बहादुर तथा शोभाराम ने रुहेलखण्ड में क्रान्ति का संगठन इस प्रकार किया कि रुहेलखण्ड के अन्य जिलों शाहजहाँनपुर तथा मुरादाबाद में भी क्रान्ति का विस्फोट एक साथ हुआ। इस क्रान्ति से अंग्रेज सैनिक बेखबर थे। बख्त खाँ इतना वीर तथा चतुर सैनिक कमांडर रुहेलखण्ड को मिला कि उसके नेतृत्व में बरेली को मुक्त कराने के बाद भारतीय सेनाओं को मुरादाबाद, शाहजहाँपुर तथा बदायूँ भेजा गया। बदायूँ का कलेक्टर एडवर्ड बडा ही दूरदर्शी था। वह

सैनिकों को बड़े मीठे शब्दों में वफादार रहने का उपदेश देता रहा। पहली जून को प्रातःकाल ही एडवर्ड को समाचार मिल गया था कि बरेली स्वतन्त्र होगया है। अतः उसने खजाने की रक्षा के लिये अंग्रेजी सैनिकों का पहरा बैठा दिया। अभी सायं काल भी हुआ नही था कि बरेली से आये हुये सैनिको ने बदायू के गुप्त संगठन से मिलकर धावा बोल दिया और कुछ ही घन्टो मे बदायूँ भी स्वतन्त्र होगया।

मुरादाबाद मे अंग्रेजो को एक बहुत बड़ी सेना थी जो उन्तीसवीं पल्टन के नाम से प्रसिद्ध थी। मुरादाबाद में मेरठ की क्रान्ति का समाचार बरेली से भी पहले पहुँच चुका था, परन्तु खान बहादुर खां तथा शोभाराम दोनों ही इतने दूरदर्शी थे कि उन्होंने बख्त खां की सहायता से मुरादाबाद के सैनिकों को यह संदेश भेज दिया कि 'समय से पहले विद्रोह करना भूल होगी।' अतः मुरादाबाद की सेना ३० मई तक अंग्रेजो के प्रति राजभक्ति का नाटक करती रही। ३१ मई को अचानक प्रातःकाल सारी भारतीय सेना मुरादाबाद के परेड ग्राउन्ड पर एकत्रित होगई क्योंकि बख्त खा द्वारा उन्हें विद्रोह करने का संदेश मिल चुका था। उधर अंग्रेजों को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उनके होश उड़ गये। जब तक कुछ संभले, क्रान्ति की आग उनके काबू से बाहर हो चुकी थी। कुछ अंग्रेज मारे गये, कुछ भाग गये। बरेली के साथ साथ मुरादाबाद भी सायंकाल होने से प्रथम ही स्वतन्त्रता के झूले में झूलने लगा।

शाहजहाँपुर मे भी वहाँ की सेना के नाम बख्त खा का संदेश पहुँच चुका था। वहाँ भी इकत्तीस मई को जब नगर सूर्य की प्रथम रश्मियो का स्वागत कर रहा था। क्रान्ति का श्री गणेश हो गया और संध्या होने तक नगर क्रान्तिकारियो के अधिकार मे आ चुका था।

जब सारा रुहेलखण्ड अंग्रेजो से मुक्त हो गया, खान बहादुर खां नवाब बना तो खान बहादुर ने शोभाराम की सहायता से आठ व्यक्तियों

की एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने थोड़े ही दिनों में बिगड़ी हुई व्यवस्था के सुधार के लिये लिये खान बहादुर के सम्मुख कुछ सुझाव प्रस्तुत किये। इस प्रकार राज्य कार्य बड़े सुचारु रूप से चलने लगे। सारे विभाग पहले से भी अच्छी तरह से चलने लगे। न्याय विभाग तो इतनी अच्छी तरह चल रहा था कि उसकी प्रशंसा शब्दो से बाहर है। इसका एक कारण यह भी था कि खानबहादुर खां स्वयं एक न्यायाधीश रह चुका था और वह न्याय विभाग के दोषो को भली भाँति जानता था। अतः उन दोषों को दूर करने का उसने अत्यन्त सफल प्रयत्न किया। शासन की बागडोर संभालने के पश्चात खान बहादुर खा और दीवान शोभाराम तथा बख्त खां तीनो की एक गुप्त बैठक पुरानी कोतवाली में हुई और निम्नलिखत महानुभावों को शासन के विभिन्न पदो पर नियुक्त किया गया।

दीवान शोभाराम के सुपुत्र मुन्शी होरीलाल १००० रुपये मासिक पर रुहेलखन्ड की सेना के बख्शी नियुक्त हुये। श्री भोलानाथ सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस सी० आई० डी० नियुक्त किये। श्री मंसूर खां पहले मुन्सिफ बरेली फिर नायब नाजिर पीलीभीत बनाये गये। श्री अकबर अली खां १००० रु० मासिक पर बरेली की सदर तहसील के तहसीलदार नियुक्त किये गये। श्री भुवनसहाय सक्सेना २०० रुपया मासिक पर आबकारी विभाग के सुपरेन्टेन्डेन्ट हुये। श्री सैय्यद अहमद दीवानी तथा फौजदारी मुफ्ती नियुक्त किये गये। मौलवी तुराबअली १५० रु० मासिक पर सुपरेन्टेन्डेन्ट न्यायालय नियुक्त किये गये। मुहम्मद अमीन खां सदरअमीन ४०० रु० मासिक वेतन पर नियुक्त किये गये तथा श्री मुजफ्फर हुसेन खां १००० रु० मासिक वेतन पर सदरसुद्दूर नियुक्त हुये। श्री पण्डित मूलचन्द ५०० रु० मासिक वेतन पर श्री शोभाराम जी के नायब दीवान बनाये गये। श्री दीन दयाल तोपों के दरोगा नियुक्त नियुक्त किये गये। श्री सैफउल्ला खा ५००) मासिक वेतन पर सुपरेन्टेन्डेन्ट जेल बनाये गये। श्री न्याज मुहम्मद १००० रु० मासिक वेतन पर सेना

के जनरल बनाये गये। श्री शुजाउद्दौला को खान बहादुर खाँ के दरबार का गायक नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त और भी छोटी छोटी सैंकड़ों नियुक्तियां की गईं।

इसके अतिरिक्त इन तीनो शक्तियों ने सेना का नये सिरे से संगठन किया और उसे चार भागो में बांट दिया। पहिला भाग दस्ता कहलाता था जिसमे १० सैनिक होते थे। दूसरा तूमन कहलाता था उसमें दस दस्ते साम्मिलित होते थे। तीसरा भाग उलूस कहलाता था जिसमे पाँच तूमन होते थे। चौथा भाग जिसे पलटन कहते थे उसमे दो उलूस होते थे। प्रत्येक दस्ते का अधिकारी जमादार कहलाता था। उसे १० रु० मासिक वेतन मिलता था। तूमन का सरदार तूमनदार कहलाता था उसे २५ रु० मासिक वेतन मिलता था। उलूस का अधिकारी उलूसदार कहलाता था उसे ५०रु०मासिक वेतन मिलता था। रेजीमेंट का अधिकारी करनल कहलाता था उसे २०० रु० मासिक वेतन मिलता था। एक सैनिक का वेतन ८ रु० से १० रु० तक होता था। इसके अतिरिक्त एक रिसालदार भी होता था जिसका मासिक वेतन १०० रु० होता था। यह रिसालदार के अन्तर्गत १०० सैनिक रहते थे। यह घुड़सवार सेना का अधिकारी होता था। खान बहादुर खां की सेना का वार्षिक व्यय लगभग तीस लाख रुपया होता था।

इसके अतिरिक्त खान बहादुर खां ने एक कर समिति भी नियुक्ति की। इस कर समिति के सदस्य थे कम्मूमल साहूकार, रामप्रसाद, रामलाल, दुर्गाप्रसाद तथा ला० कन्हैयालाल। इन लोगों ने यह निश्चय किया कि प्रजा से उनकी आय का $\frac{१}{२०}$ भाग कर के रूप मे लिया जावे। अतः समस्त साहूकार तथा बड़े लोगो की सूची तैयार की गई और एक लाख सात हजार रुपया सालाना कर लगाया गया। इस रुपये ने गोला बारूद बनाने और तोपें के ढालने मे पर्याप्त सहायता मिली। साथ ही नये रुपये ढालने का कार्य भी प्रारम्भ हुआ। श्री रामप्रसाद को

अध्यक्षता में उन्ही के मकान में नई टकसाल खोली गई। सिक्के का मूल्य १६ आने रक्खा गया।

माल विभाग शोभाराम के सुपुर्द था। शोभाराम अत्यन्त योग्य तथा चतुर व्यक्ति था। उसने लगान आदि वसूल करने का प्रबन्ध इतना योग्यता से किया कि रुहेलखण्ड के किसान नवाब के प्रति वफादार बन गये। लगान बहादुरशाह के नाम से वसूल किया जाता था।

रुहेलखन्ड मे खान बहादुर के गद्दी पर बैठने के पश्चात दिल्ली से बहादुरशाह का एक सन्देश २१ जून १८५७ को आया जो नवाब के दरबार मे शोभाराम द्वारा पढ़ा गया। उस फरमान के शब्द श्री सावरकर ने इस प्रकार लिखे है।

"भारतीयों, तुम जिसकी प्रतीक्षा आतुरता से करते थे वह स्वराज्य का मंगलक्षण अब आ पहुँचा है। क्या तुम उसका स्वागत करोगे ? या उसको गंवाओगे। इस अपूर्व अवसर से लाभ उठाओगे या उससे हाथ धोबैठोगे ? हिन्दू तथा मुसलमान भाइयो ! अच्छी तरह जान लो कि यदि अंग्रेजो को भारत में टिकने दोगे तो वे अवश्य ही तुम्हारा कत्लेआम कर तुम्हारे धर्म को नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। अंग्रेजो ने बहुत पहिले ही भारतवासियों को धोका दिया है जिससे हम अपनी ही तलवारो से एक दूसरे की गर्दन काट रहे हैं। इसलिये हमको चाहिये कि हम इस देश द्रोह को रोकें और इस पाप का प्रायश्चित करे। आज भी इसी धोखेबाजी की कूटनीति से अंग्रेज हमसे पेश आयेंगे और हिन्दू को मुसलमान के विरुद्ध भड़का देने से कभी न चूकेंगे। दत्तक पुत्र को गद्दी पर बैठने का अधिकार क्या उन्होंने नहीं ठुकराया है ? हमारे राज्य तथा प्रदेश उन्होंने हड़प लिये हैं या नही ? हमारे नागपुर का राज्य किसने छीना। अवध का राज्य कौन हड़प कर गया। हिन्दू और मुसलमान दोनो को पेरो तले किसने कुचला। मुसलमानों ! यदि तुम्हें अपने कुरान पर गर्व है और हिन्दुओं ! यदि तुम्हारे लिये गोमाता पूजनीय है तो आपस के छोटे मोटे भेद भावो को भूल करके इस

पवित्र युद्ध मे एक होकर लडो। एक ही झण्डे के नीचे होकर युद्ध भूमि मे कूद पड़ो और खून की नदियाँ बहाकर उमसे अंग्रेजो का नाम तक भारत भू से धो डालो। यदि इस युद्ध मे हिन्दू मुसलमानों में सहयोग हो और स्वदेश और स्वाधीनता के लिये शत्रु को रोकें तो उनके देश भक्ति के गौरव के हेतु गौवध की मनाही कर दी जायेगी।

इस पवित्र धर्म युद्ध में जो लड़ने वालो की सहायता पैसे स करेगा उसे जगत मे स्वतन्त्रता और परलोक में मोक्ष प्राप्त होगा, किन्तु यदि कोई स्वदेशी युद्ध का विरोध करेगा तो अपने हा पाँव पर कुल्हाडी मारेगा और आत्महत्या करके नर्क मे जायेगा।"

इस फरमान के साथ दूमरा फरमाना था जिसक द्वारा खानबहादुर खा को इन्तजामउद्दौला मुहाफिज उलमुल्क की उपाधि दी गई थी और रुहेलखन्ड का नवाब मान लिया गया था। इस घोषणा के बाद तुरन्त ही समस्त रुहेलखन्ड मे गोवध निषेध कर दिया गया। बरेली से नवाब मे कुछ गोस्त की दुकाने थी, उनको तुरन्त बन्द कर दिया गया और यह आदेश दे दिया गया कि भविष्य में बाजार के भीतर किसी प्रकार के गोस्त की दूकान नही खोली जा सकती है। कहा जाता है कि खान बहादुर खा ने शोभाराम और बख्त खा के साथ स्वयं शहर का भ्रमण किया और इस प्रकार की समस्त दुकाने उठवा दी। खानबहादुर खां की सफलता पर नाना साहब ने कानपुर से बधाई का मदेश और अपनी शुभ कामनाये भेजी।

जब बहादुरशाह और नानासाहब को यह पता लगा कि रुहेलखड मे क्रान्ति के इस प्रकार संगठन और सफलता का श्रेय वहाँ की क्रान्ति की सेना के नेता बख्त खा को है, तो यह निश्चय हुआ कि बख्त खाँ रुहेलखण्ड की कुछ सेना के साथ दिल्ली [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

बख्त खां रुहेलखण्ड से केवल एक बड़ी सेना ही लेकर नहीं पहुँचा वरन् पर्याप्त संख्या मे धन भी लेकर दिल्ली पहुँचा। खानबहादुर खां को शोभाराम की सहायता से लगानादि वसूल करने का जो ढंग रक्खा था वह बडा ही उपयोगी सिद्ध हुआ और उस धन की एक अच्छी रकम बहादुरशाह के लिये दिल्ली भेजी गई। २ जुलाई को यह सेना दिल्ली पहुँची। इस सेना के स्वागत करने के लिये सम्राट बहादुरशाह अपने दरबार से समस्त प्रतिष्ठित सरदारो और अधिकारियो को भेजा जिन्होने जमुना पार जाकर बख्त खा और रुहेलखण्ड की वीर सेना का स्वागत किया। महल में जब बख्त खां घुसा तो सम्राट स्वयं बख्त खा के स्वागत को आया और उन्हे अपने खास कमरे में लेगया जहाँ सम्राट ने देर तक बख्तखां से मन्त्रणा की। बख्तखां की वीरता और कार्य-कुशलता से सम्राट बहुत प्रभावित हुये और सम्राट ने अपने पुत्र मिर्जा को हटाकर बख्त खा को अपनी सेना का सेनापति बनाया और उन्हे लार्ड गवर्नर की उपाधि दी। बख्त खां ने सेनापति होते ही कई आदेश सेनापति की हैसियत से निकाले। सबसे पहिला आदेश बख्त खां का था, "यदि कोई व्यक्ति नगर या आसपास कही भी जनता की लूटमार करेगा तो उसके नाक कान काट डाले जायेगे। और यदि कोई पुलिस या सेना का अधिकारी इस लूटमार में शामिल होगा तो उसे फासी का दण्ड दिया जायेगा।"

खान बहादुर खां ने जो धन बख्त खां को दिया था उनसे बख्त खां ने सेना को ६ मास का वेतन पहले ही दे दिया और शेष धन सम्राट ने सैनिक व्यय के लिये खजाने में जमा कर दिया। प्रसिद्ध लेखक श्री मेटकाफ का कथन है कि ३ जुलाई को परेड ग्राउन्ड में ३० हजार सैनिको के सामने बख्त खां को सेनापति बनाने की घोषणा सम्राट द्वारा की गई।

बख्त खां के सेनापति होते ही दिल्ली के क्रान्तिकारियो मे अनुशासन और नियन्त्रण हुआ और क्रान्ति का कार्य योजना के साथ आरम्भ हुआ। इन योजनाओ में सम्राट, बेगम जीनत महल, नवाब अहमद कुली खां आदि भाग लेते और घन्टो विचार विनिमय होता।

४ जुलाई को बख्त खां ने २०००० के लगभग की सेना लेकर अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया। इस युद्ध मे पहले ही दिन बख्त खा की शानदार विजय हुई। और उसने अँग्रेजी सेना को अलीलपुर तक पीछे खदेड़ कर दिल्ली को स्वतन्त्र कराया। दिल्ली की इस विजय से बख्त खां की धाक जम गई और उन्हे सम्राट तथा नानासाहब बडे सम्मान एव प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगे, किन्तु इससे एक नुकसान भी हुआ और वह यह कि बहादुरशाह के मुंह लगे सरदार तथा सेना के अधिकारी बख्त खां से द्वेष करने लगे। मुगलवश के सरदार विशेषतया बख्त खां को ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगे। यह भारत का अभाग्य था कि भारतीय सैनिको और सरदारो मे परस्पर ईर्ष्या चलती थी और इस क्रान्ति के असफल होने का यह भी एक मुख्य कारण था।

१५ जुलाई तक कई युद्ध अँग्रेजी और भारतीय सेना के बीच मे हुये। इनका सेनानायक बख्त खां था और इन सब युद्धों में अँग्रेजों को मुँह की खानी पडी। अब अग्रेजो को बडी चिन्ता हुई कि यदि दिल्ली निकल जाती है तो शेष भारत पर अधिकार रखना असम्भव होगा। अतः उन्होंने पजाब से सिक्खो की एक बडी सेना बुलाने और कुछ शस्त्र और गोला बारूद के इकट्ठा करने का प्रबन्ध किया।

उधर हैवलाक अँग्रेजों का सेनापति कानपुर में नाना साहब की एकत्रित सेना से मुठभेड़ ले रहा था। कानपुर में एक बहुत बड़ी अँग्रेज और सिक्खों की सेना बुलाई गई। १७ जुलाई को अंग्रेजों ने कानपुर को लूटने का आदेश दिया। फिर कानपुर में जो [illegible]

में रहने वाले स्त्री पुरुष और बच्चो के साथ किये गये इतिहास में सदैव अंग्रेजो के माथे पर उनके कलंक का टीका रहेगा।

दिल्ली मे बख्त खाँ की धाक इतनी जम चुकी थी कि दिल्ली के अंग्रेज सैनिक बख्त खां के नाम से ही काँपते थे। इस बीच में अंग्रेजों के कई सेनापति बदल गये। अब जनरल रीड वहाँ का सेनापति बना, किन्तु बख्त खाँ की रुहेलखंड की सेना के सामने उसके भी दाँत खट्टे होगये और अन्त में उसे त्याग पत्र देना पड़ा। जनरल रीड के पश्चात जनरल विल्सन सेनापति बनाया गया जो बख्त खाँ के आने के बाद चौथा सेनापति था।

दिल्ली मे बख्त खाँ के आने से अंग्रेजो को एक नई समस्या का सामना करना पडा। अभी तक तो क्रान्ति का विस्फोट सगठन के बिना ही हो रहा था, किन्तु अब संगठन के रूप मे क्रान्ति का संचालन हुआ और उसका श्रेय बख्त खाँ को था। अतः इस संगठन से अंग्रेजो को अत्यधिक चिंता हुई और उन्होने भी संगठित मोर्चा बनाने की ठानी। यह संगठन कैसे किया जाय, इसका केवल एक ही उपाय था और वह यह कि पंजाब के जाट तथा सिक्ख सेनाओं को अधिक संख्या मे एकत्रित किया जाय। दूसरा उपाय था कि नये ढंग से गोला बारूद तथा तोपों को मगाया जाय। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि दिल्ली में अधिक क्रान्तिकारी सेनाओ के प्रवेश को रोका जाय। इलाहाबाद, कानपुर, झांसी और रुहेलखण्ड मे क्रान्ति को शीघ्र दबाया जाय ताकि दिल्ली को सहायता न मिल सके और दिल्ली मुख्य क्रान्तिकारी नगरो से अलग हो जाय। कानपुर की ओर जनरल रेनॉड को भेजा गया। रास्ते में फतेहपुर मे ज्वालाप्रसाद और दिक्कमसिंह की सेना ने इससे लोहा लिया, लेकिन नई तोपो और संगठित सेना का मुकाबला न कर सके और क्रान्तिकारी सेना को परास्त होना पड़ा। अब यह सेना कानपुर की ओर बढ़ी। इस अंग्रेजी सेना मे एक बात विशेष यह थी

कि सैकड़ो हिन्दुस्तानी जासूस थे जो क्रान्तिकारी सेना का भेद अँग्रेजो को बताते थे ।

नाना साहब ने स्वय क्रान्ति की सेना का अधिपत्य स्वीकार किया और एक सेना कानपुर के पास पाडु नदी पर अंग्रेजो से लोहा लेने को भेजी गई, किन्तु इस सेना को भी परास्त होना पड़ा, क्योंकि क्रान्तिकारियों के पास ऐसी तोपे कहाँ थी जैसी अँग्रेजी सेना के पास थी । अतः १७ जुलाई को अँग्रेजो ने कानपुर मे प्रवेश किया । कानपुर मे घुसते ही अँग्रेजो ने शहर को लूटने का आदेश देदिया । फिर क्या था ? किस प्रकार कत्लेआम और लूटमार हुई जिसको लिखना साधारण व्यक्ति के लिये बड़ा असम्भव है । हजारो व्यक्ति फाँसी पर लटकाये गये । कानपुर का न्यायाधीश भी, जो नानासाहब द्वारा नियुक्त किया गया था फाँसी पर लटकाया गया । नाना साहब अपनी कुछ सेना सहित कानपुर से फतेहगढ़ चले गये । इधर अंग्रेजो की सेना लखनऊ की ओर बढ़ी और लखनऊ का घेरा डाला गया । २५ जुलाई को हैवलोक गंगापार करके लखनऊ पहुँचा । इधर लखनऊ में यह समाचार पहिले ही पहुँच चुका था । २० जुलाई को रेजीडेन्सी की दीवार के नीचे क्रान्तिकारियो ने सुरगों को भरकर आग लगादी । परिणाम यह हुआ कि बहुत सी अंग्रेजो की सेना जलकर राख हो गई । क्रान्तिकारी सेनाये महीनो अंग्रेजों की सेना से लोहा लेती रही । उधर हैवलाक भी बशीरतगंज मे अपना डेरा डाले पड़ा था, किन्तु उसकी दाल नहीं गल रही थी । लखनऊ के रेजीडेन्सी के युद्ध में जो आजकल बूढी बारद के नाम से प्रसिद्ध है लगभग ५०० अंग्रेज और ४०० भारतीय मारे गये । २७ अक्तूबर को सर कैम्बिल कलकत्ते मे आकर उतरा । चीन सिंगापुर और लंका से भी अंग्रेजों के लिये सहायता मांगाई । इधर

सुसंगठित सेनाओं ने कई बार आक्रमण किये। अन्त में १६ नवम्बर को सिकन्दर बाद मे अंग्रेजो की सेना और क्रान्तिकारी सेना से मुठभेड होगई। सिकन्दर बाद के आक्रमण में २००० क्रान्तिकारी मारे गये। केवल ४ क्रान्तिकारी बचे। इस युद्ध से क्रान्तिकारियों को देश भक्ति और वीरता का पता चलता है कि उनमे से एक ने भी भागने या पीछे हटने का नाम नही लिया। 'इन्डियन म्यूटिनी' नामक पुस्तक मे खड ४ पृष्ठ १३२ पर मैलिसन ने इस कथन की पुष्टि इस प्रकार की हैं "इस युद्ध में २००० क्रान्तिकारी मारे गये और रक्षा करने वाले केवल ४ क्रान्तिकारी बचे।" इस प्रकार लखनऊ का पतन हुआ।

लखनऊ के पतन से अंग्रेजो को कानपुर मे अपना अड्डा जमाने और सेनाओं को पहुँचाने का एक स्वर्ण अवसर मिला। इधर तात्या टोपे भी इस बात का प्रयत्न कर रहा था कि क्रान्तिकारी सेनाओ का फिर संगठन किया जाय। वह इसी धुन मे बची हुइ सेना को गगा पार लेजाकर फतेहगढ में नानासाहब के पास पहुँचा। तात्या टोपे नाना साहब के आदेशो पर ग्वालियर नरेश के पास क्रान्ति की सहायता का संदेश लेकर गया। किन्तु ग्वालियर नरेश तो अंग्रेजो की वफादारी की सौगन्ध खाये बैठा था। निराश होकर तात्या टोपे ने कुछ गुप्तचर ग्वालियर नरेश की सेना में भेजे। इस प्रकार एक बहुत बड़ी सख्या मे सैनिको के हृदय मे क्रान्ति की भावनाये भर दी गईं। अब तात्या ने कानपुर से दूर कालपी के किले का क्रान्तिकारियो का केन्द्र बनाया और वही सेनाओ का संगठन आरम्भ हुआ। अंग्रेजी सेना को लखनऊ मे फँसा देख कर तात्या टोपे ने कानपुर के गांवो पर अधिकार जमा लिया। २६ नवम्बर को तात्या टोपे और अंग्रेजी सेना के बीच पाडु नदी पर जो युद्ध हुआ उसमें अंग्रेजों को मुँह की खानी पड़ी। इस हार से अंग्रेज सचेत हुये और पीछे हटने की ठानी किन्तु तात्या भी बड़ा बुद्धिमान था, उसने क्रान्तिकारी सेनाओ को इस प्रकार दाहिने और

बोये भगाया कि सूरज छिपने तक अंग्रेजी सेना का सफाया बोल दिया गया। बहुत संख्या मे गोले बारूद और हथियार तात्याटोपे के हाथ लगे। पूरी चढ़ाई मे तात्या टोपे ने अंग्रेजो सेना के छक्के छुड़ा दिये। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सेना के समस्त प्रसिद्ध अधिकारी जैसे ब्रिगेडियर विलसन मार्फी, मेजर स्टिरलिंग तथा गिवन्स आदि मारे गये। अंग्रेजो की इस हार की पुष्टि करते हुये चार्ल्स बाल अपनी पुस्तक 'इन्डियन म्यूटिनी' खंड २ पृष्ठ १०० पर इन शब्दो मे वर्णन करता है :—

"You will read the account of the days, fighting with astonishment, for it tells how English troops and their far famed bravery were repulsed, and they lost their camp, their baggage and position to the scouted and dispised natives of India. The beaten Firangis as the enemies has a right to call them, have retreated to their entervehements amidst overturned tents pillaged baggage, men's kits, fleeing camels, elephants and horses and servants. All this is most melancholy and disgraceful."

इस प्रकार सम्पूर्ण कानपुर क्रान्तिकारियों के अधिकार मे आ गया, किन्तु अंग्रेजो के हौसले लखनऊ की जीत से बढ़ चुके थे और उन्होंने कानपुर को जीतने के लिये विभिन्न प्रकार की योजनाये बनाईं। बहुत बडी संख्या में सेनाये बुलाई गई और ३ सितम्बर को इन सेनाओ ने क्रान्तिकारियो पर हमला किया। इस युद्ध मे क्रान्तिकारियो की सेनाओं ने अंग्रेजों की सिक्ख और गोरी सेनाओ के दाँत खट्टे कर दिये, अब अंग्रेजो ने डर कर हमला करने के लिये और सेनायें बुलाईं। इन सेनाओं ने संगठित रूप मे सीधा आक्रमण क्रान्तिकारी सेनाओ

पर किया। आखिर सीमित साधनो के आधार पर क्रान्तिकारी सेना कब तक अँग्रेजी सेना से लोहा लेती ? परिणाम यह हुआ इस आक्रमण में इन सेनाओं की पराजय हुई। इन क्रान्तिकारी सेनाओ का अधिपत्य स्वयं नाना साहब तथा तात्या टोपे कर रहे थे। इस विजय के बाद अँग्रेजो ने शिवराजपुर को लूटा, फिर नाना साहब के महल को तोपों से छलनी करके विजय का आनन्द मनाया गया।

इधर कुँवरसिंह कलकत्ते और लखनऊ के बीच बनारस पर आक्रमण कर क्रान्तिकारियो को प्रोत्साहित कर रहे थे। उसने इलाहाबाद और बनारस पर कई बार हमले किये। उधर अँग्रेज लखनऊ मे व्यस्त थे। उसने कई मास तक अग्रेजो के पैर दांत खट्टे किये, बनारस और इलाहाबाद मे अँग्रेजो के पैर न जमने दिये। किन्तु लखनऊ और कानपुर की पराजय के पश्चात अँग्रेजो के हौंसले बहुत बढ चुके थे। उन्होने इन दोनो स्थानो से अधिकार पाने के पश्चात् ६ अप्रैल को कुवरसिंह की क्रान्तिकारी सेना पर हमला किया। इस सेना का सेना नायक जनरल मार्क था। किन्तु कुँवरसिंह ने उन्हे खदेड़ दिया। जनरल मार्क आजमगढ की ओर भाग गया। आस पास के समस्त क्षेत्र कुँवरसिंह के हाथ आगये।

जनरल डगलस आजमगढ़ को जनरल मार्क की सहायता के लिये भेजा गया। डगलस कुँवरसिंह का पीछा कर रहा था। अब कुँवरसिंह की सेना काफी थक चुकी थी। परिणाम यह हुआ कि मनहर मे कुँवरसिंह तथा अँग्रेजों की सेनाओ मे मुठभेड होगई। कुँवरसिंह की सेना हार गई, क्योंकि उसके पास इतनी तोपें गोला बारूद कहाँ थे जैसे अँग्रेजो के पास, साथ ही कुँवरसिंह की सेना लड़ते २ काफी थक चुकी थी। तीसरा कारण रसद और खाद्य सामग्री का अभाव था। इन कारणोवश कुँवरसिंह परास्त हुये। कुँवरसिंह अपनी कुछ सेनाये लेकर वहाँ से फरार हो गये। ये बलिया के समीप शिवपुर मे

नावो पर बैठकर गंगा नदी को पार कर रहे थे कि शत्रुओ को पता चल गया और शत्रुओं की एक गोली कुँवरसिंह के हाथ में लगी। ८० वर्ष के वीर सेनापति कुँवरसिंह ने अपने हाथ गोली की पीड़ा देखकर अपनी खडग निकाल कर अपना हाथ काट कर गंगा नदी में फेंक दिया। कुँवरसिंह और उसकी अवशिष्ट सेना २२ अप्रैल को जगदीशपुर में पहुँची जहाँ उसका राजसिंहासन था। उधर अँग्रेजो ने चारो तरफ से जगदीशपुर को घेर लिया और २३ अप्रैल को वहाँ पर आक्रमण कर दिया।

कुँवरसिंह ने अपने कटे हुये हाथ की तनिक भी परवाह नहीं की और क्रान्तिकरी सेनानायक बनकर गोरी सेना से मुठभेड ली, जिस वीरता का कुँवरसिंह ने परिचय दिया उसका उदाहरण इतिहास में अन्यत्र कदाचित् ही मिलता होगा। इस कथन की पुष्टि में 'हिस्ट्री-आफ दि इन्डियन म्युटिनी' के लेखक ह्वाइट लिखते हैं, "अँग्रेजों को इस प्रसंग मे बहुत बुरी मुँह की खानी पड़ी।" किन्तु इस विजय के पश्चात् कुँवरसिंह कटे हुये हाथ की पीडा भयंकर रूप धारण कर गई और इस विजय से तीसरे ही दिन २७ अप्रैल को वह परलोक सिधार गये।

कुँवरसिंह के पश्चात् अमरसिंह, जो कुँवरसिंह के भाई थे क्रान्ति की इस सेना के सेनानायक बने। उधर अंग्रेंजो नेएक बड़ी सेना और युद्ध सामग्री इकट्ठी कर जगदीशपुर की तबाही करने की घोषणा की। अमरसिंह और उसके साथी बड़ी वीरता से लडे किन्तु आखिर सीमित साधनो के कारण वे अंग्रेज सेना का मुकाबला नहीं कर सके। इस प्रकार विहार भी शत्रु के हाथ आगया।

झाँसी की रानी बराबर अंग्रेजों से लोहा लेती रही थी। १८५८ के आरम्भ में ही अंग्रेजों ने झांसी मे उत्पन्न विद्रोह को दबाने के लिये नाना प्रकार के षडयन्त्र रचे। किन्तु रानी के सामने उनकी एक न चली और उन्हें मुँह की खानी पड़ी।

१ अप्रेल सन् १८५८ को तात्या की हार के पश्चात रानी को जो सहायता तात्या से मिल रही थी वह बन्द होगई। अंग्रेजो ने झांसी के किले पर घेरा डालकर किलेबन्दी करने का प्रयास किया और अधिक संख्या में युद्ध की सामग्री मंगाई। किले पर लगातार तोपो ने गोले बरसाना आरम्भ किया। परिणामतः किले की रक्षा करने वाले रानी के कई योद्धा मारे गये, जिनमे खुदाबख्श और गुलामगौस खां का नाम उल्लेखनीय है। रानी के सामने कोई शेष चारा न था सिवाय इसके कि वह किला छोड दे। अतः रानी ने किला छोड़ने की ठानी। वह घोड़े पर बैठ और अपने साथ कुछ घुड़सवार लेकर आधी रात को किले से बाहर निकली और कालपी की ओर कूच किया। अंग्रेजी सेना का सेनानायक हूरोज था। उसको पता चला तो उसने किले की ओर सेना बढाई। किन्तु उस समय तक रानी जा चुकी थी। अंग्रेजो ने यह समाचार पाते ही रानी के पीछे घुडसवार सेना दौड़ाई। रानी दूसरे दिन कालपी पहुँची। अंग्रेजी सेना के कुछ सिपाहियो से रास्ते मे मुठभेड़ हुई किन्तु रानी और उसके साथियो ने उनको मौत के घाट उतार दिया।

दूसरे दिन रानी और नाना साहब में मन्त्रणा हुई। झांसी पर उधर अंग्रेजी सेनाओ के आक्रमण हुये और झांसी का पतन हुआ। ३ जून को रानी ने एक सेना के साथ झांसी की ओर कूच किया और अंग्रेजी सेनाओं पर आक्रमण किया। किन्तु अंग्रेजी सेना इतनी सुसंगठित होगई थी कि उसका मुकाबला करना कठिन था। इस आक्रमण में अंग्रेजी सेना पीछे लगा दी गई और रानी की सेना को चारो ओर से घेर लिया गया। युद्ध में रानी की तितर बितर होगई। जब रानी ने यह देखा कि शत्रु आगे बढ़ रहा है और उसकी सेना तितर बितर होकर परास्त हो रही है तो वह स्वयं घोडे को आगे दौड़ाकर बढ़ी और तलवार के वे हाथ दिखाये जिनकी प्रशंसा

इतिहासकारो ने भी की है। रानी लड़ रही थी कि इतने में ही उसके गोली लगी और कुछ ही क्षणो में उनका काम तमाम होगया।

जब अवध और कानपुर मे क्रान्तिकारियो को पराजय मिली तो नानासाहब, अहमदशाह तथा अन्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेताओ को भागना पड़ा। किन्तु प्रश्न यह था कि जाये तो कहाँ ? रुहेलखण्ड अभी क्रान्तिकारियों के हाथ मे था और अंग्रेजों की यहाँ दाल नहीं गली थी। वख्त खाँ जिस प्रकार की संगठित सेना को वहाँ छोड़ गया था उसका लोहा अग्रेज माने हुये थे। अतः नाना साहब, अहमदशाह तथा अन्य नेता ३ मार्च १८५८ को रुहेलखण्ड की ओर गये दिल्ली और अवध के पतन के पश्चात रुहेलखण्ड ही एक ऐसा स्थान था जहाँ अब भी खान बहादुर खाँ नवाब था और सम्पूर्ण रुहेलखण्ड क्रान्तिकारियों का अड्डा बना हुआ था। ३ मार्च को बरेली पहुँचे और वहाँ से ये लोग शाहजहाँपुर गये। शाहजहाँपुर में कुछ अन्य क्रान्तिकारी भी उपस्थित थे। वहाँ गुप्त मन्त्रणा हुई। शाहजहाँपुर में नानासाहब को समाचार मिला कि बेगम हजरत महल, शाहजादा मिर्जा, फिरोजशाह, राजा तेजसिंह तथा अन्य क्रान्तिकारी नेता बरेली में आ गये हैं। अतः नाना साहब भी बरेली आगये। इन लोगो ने नौमहिला मस्जिद के समीप जहाँ बरेली के सैय्यदो का पुराना निवास स्थान था और जहाँ अब गवर्नमेंट हाई स्कूल है, कई दिन मन्त्रणा की और अन्त में सर्व सम्मति से यह निश्चय किया कि बरेली में किसी प्रकार अंग्रेजों को रोका जाये। इधर अंग्रेजी सेनाये बरेली के निकट आगई थीं और नकटिया नदी पर उन्होंने अपने पडाव डाल रक्खे थे। इन सेनाओं का सेनापति कैम्बले था। क्रान्तिकारी सेना अंग्रेजी सेनाओं को नकटिया नदी को पार नहीं करने देना चाहती थी अंग्रेजी सेनायें वर्षा से पूर्व ही बरेली

अंग्रेजी सेनाओं पर एक साथ धावा बोल दिया। प्रसिद्ध लेखक ओरसेल ने अपनी डायरी में लिखा है कि युद्ध इतना घमासान था कि एक बार अंग्रेजी और सिक्ख सेना के दाँत खट्टे होगये थे। परन्तु अंग्रेजों के पास जिस प्रकार की तोपें तथा हथियार थे वैसे क्रान्तिकारियों के पास कहां। अतः सब क्रान्तिकारी मारे गये। रसेल का तो यहा तक कहना है कि इन क्रान्तिकारियो में केवल एक सैनिक बचा, उसको एक सिक्ख सैनिक ने गोली मार कर मौत के घाट उतार दिया। जब शाहजहाँपुर के क्रान्तिकारियो ने देखा कि अंग्रेजों की सेनाये बरेली मे फैली हुई है तो उन्होने शाहजहाँपुर की अँग्रेजी सेनाओ पर आक्रमण कर दिया। इस समय मौलवी अहमदशाह शाहजहाँपुर मे ही मौजूद थे और यह युद्ध अब उन्ही के इशारे पर हो रहा था। प्रसिद्ध इतिहासकार मैलिस ने मौलवी साहब द्वारा किये गये आक्रमण की योजना की बडी प्रशंसा की है। ११ मई से १५ मई तक शाहजहाँपुर में घमासान युद्ध हुआ। शाहजहाँपुर के युद्ध का समाचार पाते ही बेगम हजरत महल, शाहजादा फीरोजशाह और नाना साहब सब शाहजहाँपुर मे युद्ध का उचित संचालन करने के लिये पहुँचे। उधर मौलवी अहमदशाह शाहजहाँपुर से किसी प्रकार रात को खिसक गये ताकि बाहर से क्रान्तिकारी सेनाओ की सहायता करे और सेनाये इकट्ठी कर सकें। मौलवी अहमदशाह रात ही रात में पुवाया जो कि शाहजहाँपुर के समीप एक छोटा सा राज्य था, पहुँचा और वहाँ के नरेश से अनुरोध किया कि वह अपनी सेना क्रान्तिकारियों की सहायता के लिये भेजे। किन्तु यह राजा बडा कायर और अंग्रेजों की वफादारी का दम भरने वाला था। उसने छल कपट करके मौलवी अहमद शाह को अपने महल में बुला भेजा। जब मौलवी साहब उसके महल मे दाखिल हुये तो राजा ने महल के दरवाजे बन्द करवा दिये और मौलवी साहब को महल में घेर लिया। जैसे ही मौलवी साहब महल के पास पहुँचे, राजा ने अपने भाई को संकेत किया उसने

कमिश्नरी बरेली में बरगद का पेड़ जिस पर
स० १८६० ई० में २५७ क्रान्तिकारियों
को फांसी पर लटकाया गया।

नौमहला मस्जिद बरेली जहाँ मजाहिदों की
कब्रें बनी हैं

भाई ने मौलवी साहब की छाती में गोली मारी और मौलवी साहब ने वहीं प्राण त्याग दिये। इस प्रकार मौलवी साहब पुवाये के देशद्रोही राजा के कपट का शिकार हुये : अब क्या था, राजा जगणोथ सिंह, पुवाये के नरेश को ब्रिटिश राज्य की बफादारी का एक और अवसर मिला और उसने मौलवी साहब के शरीर को एक बोरे में बन्द करके ब्रिटिश सेनापति के पास भेज दिया। ब्रिटिश सेनानायक के हर्ष की सीमा न रही, उसने राजा को ५० हजार का पुरस्कार दिया और मौलवी साहब का शरीर फौजी चौकी पर लटका दिया गया जिससे जनता भयभीत हो।

कहा जाता है कि मौलाना साहब इतने प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे कि जब मौलाना अहमदशाह की मृत्यु का समाचार इङ्गलैंड पहुँचा तो बडी खुशियाँ मनाई गईं। इस कथन की पुष्टि श्री होम्म ने अपनी पुस्तक History of the Indian Mutiny मे उल्लेख करते हुये निम्न शब्दो मे की है, "मौलवी अहमदशाह एक असाधारण व्यक्ति था। विद्रोह के काल में उसके सैनिक नेतृत्व की योग्यता का परिचय कई प्रसंगों में मिलता है।" मौलवी साहब की मृत्यु से रुहेलखड की क्रान्तिकारी सेनाओ को बडा धक्का लगा। खान बहादुर खाँ ने शोभाराम की सलाह से बरेली को खाली करने की ठानी, ताकि बरेली के नगरवासियो की जाने व्यर्थ न जावे और लूटमार का शिकार न होना पड़े। ५ मई की रात में बरेली खाली कर दी गई। बरेली खाली होने के बाद कोम्बले का हौसला बहुत बढ़ गया और उसने बरेली नगर मे तीन ओर से घुसने की ठानी। क्रान्तिकारियो ने फिर एक मोर्चा नकटिया नदी के पार होने पर लिया किन्तु वे असफल रहे।

दिल्ली में रुहेलखण्ड के सरदार बख्त खाँ ने सैनिक संगठन और क्रान्ति की जो योजनाये बनाईं, यदि उन पर अमल किया जाता तो प्रायः भारत का इतिहास आज कुछ और होता किन्तु बख्त खाँ के

के सेनापति बनने के पश्चात दिल्ली के राजमहल से लेकर सरदारो तक में ईर्ष्या की भावनायें खडी हुई। बख्त खां एक मामूली घराने का सरदार था। भला शाही सरदार उसकी इस पदवी को क्यो मानने को लगे। वे उसे दिन रात नीचा दिखाने की सोचते थे। आपस के इस ईर्ष्या द्वेष से क्रान्ति का संगठन अनुशासन हीन होने लगा और बख्त खाँ जो लड़ी बड़ी योजनाये बनाये बैठा था उनकी पूर्ति के लिये कोई सहायक न पा सका। रुहेलखण्ड की जो सेना बख्त खाँ के पास थी वही उसका अनुशासन मानने और उसकी योजनाओं की पूर्ति मे सहायक बनी। किन्तु इससे एक बड़ी हानि यह हुई कि अन्य सैनिको मे मतभेद और बख्त खा के विरुद्ध गलत फहमी आरम्भ हुई। सैनिक समझने लगे कि बख्त खां रुहेलखण्ड की सेना की अनुचित प्रशसा और पक्ष करता है। अतः सैनिक उस पर पक्षपात का आरोप लगाने लगे। उधर बहादुरशाह के दरबारी और शाही वश के व्यक्ति बख्त खाँ के आदेशो का उल्लंघन करते और उसकी योजनाओं मे बाधा डालने लगे। परिणाम यह हुआ कि क्रान्ति की सेना अनुशासनहीन होने लगी और दिन प्रतिदिन दिन बख्त खाँ का सेना पर से प्रभाव हटने लगा।

उधर अग्रेजो ने कुछ ऐसे मौलवी और पडित बड़े २ वेतन देकर नौकर रक्खे जो गाँवों और शहरो में जाकर हिन्दू और मुसलमानों में एक दूसरे के प्रति वैमनस्य फैलाते थे। यहाँ तक कि राज्यों के नरेशों तक में ये पडित सन्यासी का रूप धारण करके जाते और कभी धाड़ धाड़ रोने लगते और जब ये नरेश इनसे रोने का कारण पूछते तो वे लम्बी साँस भरकर कहते कि भारत में बड़ा अनर्थ होने जा रहा है, बहादुरशाह को गद्दी पर बैठाकर मुसलमान समस्त भारत के हिन्दुओं को तलवार के जोर पर मुसलमान बनाने की योजनायें बना रहे हैं। इसी प्रकार मौलवी जब मुसलमानो या नवाबों से मिलते तो सर पटक कर बैठ जाते और कहते 'या अल्लाह! इस्लाम का खुदा ही हाफिज

है। हिन्दुओ ने साजिस करके बहादुरशाह को कठपुतली नवाब बना रक्खा है और इसके सहारे सारे हिन्दुस्तान पर मरहठा हकूमत होने जा रही है। अंग्रेजी को निकालने के बाद नानासाहब और मरहठे बहादुर शाह को कत्ल करके हिन्दुस्तान में हिन्दू हकूमत कायम करेगे और इस्लाम को तबाह कर देंगे। उन्होंने गऊकशी बन्द होने का फरमान बहादुरशाह के दस्तखतो से निकलवा लिया है। अगर अंग्रेज चला गया तो मुसलमानो के इबादतगाहो का भी खुदा हाफिज है।"

जब सम्राट के पास इस प्रकार के समाचार पहुँचे तो बेगम जीनत महल को बडा दुख हुआ और उसने इसके खंडन के लिये कई उपाय किये। सम्राट ने स्वयं अपनी कलम से लिख कर निम्नलिखित संदेश बख्त खाँ को दिया कि वह इन संदेशों को हिन्दू राज्यो के नरेशो के पास पहुँचा दे। इस संदेश की भाषा श्री वी० डी० सावरकर ने अपनी पुस्तक 'भारत का स्वतन्त्रता समर' नामक पुस्तक मे पृष्ठ ३२२ पर इन शब्दो मे लिखी है—'मेरी यह तीव्र इच्छा है कि हिन्दुस्तान से चाहे जो मूल्य देकर यहाँ से फिरङ्गी को भगा हुआ देखूं। मेरी यह तीव्र इच्छा है कि समस्त भारत स्वतन्त्र हो जावे किन्तु स्वाधीनता के लिये लडे जाने वाले इस क्रान्ति युद्ध को विजय माला तभी पहनाई जायेगी जब कोई ऐसा व्यक्ति राष्ट्र की भिन्न शक्तियों को संगठित कर एक ओर लगा सके, जो सारे आन्दोलन का दायित्व तथा संचालन सभाल सके, जो समूचे राष्ट्र का सर्वमान्य प्रतिनिधित्व कर सके, मैदान मे आकर इस क्रान्ति का नेतृत्व करे। अंग्रेजो को निकाल देने के बाद अपने निजी लाभ के लिये भारत पर शासन करने की मेरी तनिक भी इच्छा नही है। यदि आप राजा लोग शत्रु को भगा देने के लिये अपनी तलवारें उठाकर आगे आने के लिये तैयार हों तो मैं अपने तमाम अख्त्यारात आपके लिये ऐसे संघ के हाथ मे सौप दूंगा जिसे इस काम

के लिये चुना जावे।" सम्राट का असली पत्र The Narrative of Letters में Maidcaif ने पृष्ठ २२७ पर प्रकाशित किया है।

बहादुरशाह के इस पत्र का प्रभाव जैसा पड़ना चाहिये नहीं पड़ा। उधर बख्त खाँ बड़ा दुःखी था। उसने कई बार सेना की अनुशासन हीनता और शाही वंश के लोगों की ईर्ष्या द्वेष की समस्या नानासाहब के सम्मुख रक्खी। उसने इस आशय का एक पत्र खान बहादुर खाँ के पास बरेली भी भेजा किन्तु सबने यही राय दी कि जहाँ तक सम्भव हो सके काम निकाला जाय। अब एक अड़चन बख्त खा के सामने और उत्पन्न हुई, वह यह कि अब दिल्ली की रक्षा के लिये केवल दो ही बड़ी सेनाएँ दिल्ली में रह गई थी, एक नीमच की और दूसरी बरेली की सेना थी जिसे बख्त खाँ अपने साथ लाया था और कुछ सैनिक बाद को बुलाये गये थे। यह बड़ी वीर और अनुशासन प्रिय सेना थी। इस सेना के बल पर बख्त खाँ ने कई बार अँग्रेजो के दाँत खट्टे किये थे। इस सेना की वीरता और अनुशासन की ख्याति समस्त भारत में फैल चुकी थी। विशेषतया बहादुरशाह और बेगम जीनत महल इस सेना की सराहना हर समय करते थे। किन्तु यह बात दिल्ली में पड़ी हुई दूसरी नीमच की सेनाओ को बड़ी अखर रही थी और वे वे बरेली की इस सेना को फूटी आँखो से भी नहीं देख सकती थी। यदि कोई व्यक्ति बिगड जाता तो उसकी सारी जिम्मेदारी नीमच की सेनाओं द्वारा बरेली की इस सेना या बख्त खाँ के सर पर थोप दी जाती थी। जब दिल्ली चारो ओर से घिर गया तो नीमच की सेनायें अपने वेतन की मांग करती और जब उन्हें समय पर वेतन न मिलता तो वह दिल्ली के धनी मानी लोगो को लूट लेती थी। इससे बख्त खाँ को बड़ी कठिनाई हुई। अतः उसने बरेली और नीमच दोनो की सेनाओं के मुख्य अधिकारियों का एक सम्मेलन किया और उसमें एक बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया। बख्त खां के इस भाषण का प्रभाव सैनिकों

पर बहुत अच्छा पड़ा और अब दोनो स्थानो के सैनिक अँग्रेजो से आखिरी मोर्चा लेने को तैयार हुये। किन्तु वे जब चढ़ाई करने के लिये सेनायें चली और नजफगढ़ मे डेरे डालने का आदेश दिया गया तो नीमच की सेनाओं ने बरेली की सेनाओ के साथ कार्य करने और लड़ने से साफ इन्कार कर दिया, यहाँ तक कि बरेली की सेनाओं के साथ पड़ाव डालने से भी इन्कार कर दिया। उसके बाद नीमच की सेनाओ ने बख्त खाँ से यह कहकर कि वह रुहेलखन्ड की सेना का पक्ष लेता है अँग्रेजी सेनाओ पर आक्रमण करने से इन्कार दिया। किसी तरह यह समाचार गुप्तचरो द्वारा अँग्रेजी सेनापति के पास पहुँच गया। फिर क्या था? २५ अगस्त की रात ही रात मे अँग्रेजो की सेनाये चढ़कर नजफगढ़ मे चढ़कर आ गईं और बख्त खाँ की सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। नीमच की सेनाये जो आक्रमण करने से इन्कार कर चुकी थीं बेखबर अपने डेरे में सो रही थी, अंग्रेजो की सेना का आते ही शिकार बनी। परिणाम यह हुआ कि नीमच की सेना का एक-एक सैनिक मारा गया। बरेली की सेना ने बख्त खाँ का आदेश माना और वह बड़ी वीरता से लड़ती हुई पीछे की ओर हट गई। अंग्रेजों की यह सेना नये शस्त्रो से सुसज्जित थी। इसमें ३५०० गोरे सिपाही, ५००० पंजाबी सिक्ख और २५०० काश्मीरी तथा जाट थे। कुल मिलाकर ११००० थे। इन सेनाओ की सहायता के लिये और भी सेनाये बुलाई गई और दिल्ली पर चारों ओर से घेरा डाल दिया गया। इधर बख्त खा के पास केवल रुहेलखण्ड की बची खुची सेना के अतिरिक्त कुछ न था। किन्तु फिर भी बख्त खाँ उनकी हिम्मतो को बढ़ाता था और उन्हें यह आशा दिलाता था कि रुहेलखण्ड और कानपुर से सेनाये आ रही है। किन्तु रुहेलखड की सेनाये तो रुहेलखण्ड को जीतकर कुमायू को जीतने के

१४ दिसम्बर को अंग्रेजो ने दिल्ली पर ३ ओर से चढाई की। एक सेना निकलसन की और दूसरी सेना मेजर रीड की सरक्षता मे आगे बढी। इस दशा में भी बख्त खां ने वह जौहर दिखाये कि इतिहास में बख्त खाँ की वीरता सदैव स्वर्ण अक्षरो मे लिखी जायेगी। बख्त खाँ ने रुहेलखण्ड की सेना को पीछे की ओर और आगे दिल्ली के सैनिकों को रक्खा और अंग्रेजी सेना का इतनी वीरता से मुकावला किया कि मेजर रीड मारा गया तथा उसकी सेनायें तितर बितर हो गईं। किन्तु अभी तो और तीन ओर चढाई जारी थी। काश्मीरी दरवाजे पर तो अंग्रेज के बडे बडे सैनिक अधिकारी लगे हुये थे। बख्त खाँ की संरक्षता मे क्रान्तीकारी चप्पा चप्पा भूमि के लिये जिस वीरता से लडे उसकी प्रशसा तो अंग्रेज इतिहासकारो एवं लेखकों ने भी की है।

दिल्ली के आधे से अधिक भाग पर अंग्रेजों का पुन: अधिकार हो गया, किन्तु बक्त खाँ और रुहेलखण्ड की बची हुई सेना अब भी अंग्रेजो से लोहा ले रही थी। बख्त खाँ ने अपने सैनिको को मुखातिब करके कहा, "वीरो! अंग्रेजों के हाथ से फाँसी खाकर मरने से तो रणक्षेत्र में अपनी मातृभूमि के लिये शहीद हो जाना कहीं अधिक अच्छा है।" बख्त खाँ ने सैनिकों को आदेश दिया कि वे दिल्ली से बाहर निकलकर अंग्रेजो की सेनाये रोकेगे, मुकाबला करेगे। बख्त खाँ ने बहादुरशाह से भी भेंट की और उसने अपने साथ सेनाओ की संरक्षता में चलने को कहा। किन्तु बहादुरशाह इतना घबरा गया था कि वह कुछ निर्णय न कर सका। इस निर्णय न करने में बहादुरशाह के कुछ रिश्तेदार और दरबारी जिम्मेदार थे, जो बख्त खाँ से ईर्ष्या रखते थे, उन्होंने बहादुर को किसी निर्णय पर न पहुँचने दिया। इलाही मिर्जा जो कि अंग्रेजो का जासूस और सम्राट का रिश्तेदार था, उसने सम्राट को पाठ पढ़ाया कि वह अंग्रेजो को आत्म समर्पण करदे तो वह अंग्रेजो से उसे माफी दिला देगा और राज्य वापिस कराने मे उसका सहायक होग

इलाही बख्श और रजाअली अंग्रेजो के जासूस इस बात का प्रयत्न कर रहे थे कि बहादुरशाह कही बख्त खाँ की बात में न आजावे, अतः दोनो ने बहादुरशाह को बख्त खाँ के साथ जाने से यह कहकर रोक दिया, "आलम पनाह ! आप मेरे रिश्तेदार और अजीज है। आपकी जान और आपकी इज्जत का ख्याल जो हम लोग कर सकते हैं, बख्त खाँ नही कर सकता, फिर बख्त खाँ एक रोहिला सरदार है। वह दिल्ली से बाहर का रहने वाला है। वह पहिले भी अंग्रेजी सेना मे सूबेदार था और अब भी अग्रेजो से जाकर मिल जायेगा। आपको अकेला वतन के बाहर ले जाकर छोड देगा, फिर आपका क्या हशर होगा, कभी आपने यह भी सोचा है ?" सम्राट मिर्जा मी इन चिकनी चुपड़ी बातो मे आगया और उसने बख्त खाँ की इच्छा को ठुकरा दिया और स्वय हुमायुँ के मकबरे मे जाकर छिप गया। सम्राट को हुमायूँ के मकबरे मे छिपाकर मिर्जा इलाहीबख्श झट अग्रेजो के डेरे मे पहुँचा और समाचार दिया कि सम्राट शहजादो सहित हुमायूँ के मकबरे में छिपा है और बख्त खाँ दिल्ली नगर के बाहर चला गया है। अब क्या था !" स्वयं हडसन हुमायूँ के मकबरे में पहुँचा और सम्राट, शहजादों तथा बेगम जीनत महल को गिरफ्तार कर लिया। शहजादों को एक घोडा गाडी मे बिठाकर सारे शहर में अपमानित करके घुमाया गया और अन्त में उनके सरो को काटकर एक थाली में रखकर सम्राट बहादुर शाह के पास यह कहलाकर भेजा गया कि अंग्रेजों ने सम्राट को तोहफे भेजे हैं। जब सम्राट ने उस थाली पर से कपडा उठाया तो अभागे शहजादो के सर थे। बेगम गश खाकर गिर पडी। सम्राट के मुँह से एक हाय निकली। किन्तु वह सम्हला और उसने शहजादो के शिरो की ओर मुड़कर दोनो हाथो को आकाश की ओर उठाते हुये कहा, "या अल्लाह ! तैमूर की औलाद यूँही सुर्खरू होकर आया करे।" शहजादो की लाशो को कोतवाली की छत पर लटका दिया गया, ताकि दिल्ली के

समस्त नागरिकों को ज्ञात हो जाय कि मुगलवंश का विनाश होगया है।

इस घटना के पश्चात दिल्ली में लूटमार और हत्याकाण्ड का प्रलयरूह मचा कि नादिरशाह और चंकेज खाँ की बर्बरता को भी मात दे दिया गया। अंग्रेजी इतिहासकार एवं लेखको ने भी यह माना है कि दिल्ली में लूटमार और कत्ल के जो काड हुये उसकी कोइ सीमा न रही। इस हत्याकाड के सम्बन्ध में एक पत्र लार्ड एलफ़िस्टन ने सर जान लारेंस को लिखा जिसके शब्द इस प्रकार थे, "सेना का घेरा उठाने के पश्चात् हमारी सेनाओ ने जो हृदय विदारक अत्याचार किये उससे सचमुच हृदय कांप उठता है। शत्रु और मित्र किसी मे भी भेद न करते हुये कत्लेआम की नीति रक्खी गई। लूटमार के विषय मे तो इन अंग्रेजो ने नादिरशाह को भी मात कर दिका।" ये शब्द लारेन्स ने अपनी 'आत्म-कथा' में खड २ के पृष्ठ २६२ पर लिखे है।

इस प्रकार १३५ दिन तक स्वदेशी राज्य स्थापित रहने के पश्चात् दिल्ली फिर से फिरंगियो के हाथ में आगयी। दिल्ली का बूढ़ा सम्राट बहादुरशाह कैद कर लिया गया और रंगून भेज दिया गया जहाँ उसने अन्तिम दिन व्यतीत किये।

बहादुरशाह के कैद होजाने के पश्चात् और दिल्ली पर फिरगी अधिकार होजाने के उपरान्त जो अत्याचार दिल्ली की जनता पर किये गये उनकी सीमा न रही और कदाचित् विश्व के इतिहास में इस प्रकार के अत्याचारों का अन्यत्र कही उदाहरण नही मिलता है। आम लूटमार के साथ बख्त खाँ के लोगो को तोप के मुंह से बांधकर प्रतिदिन उडाया जाता था। प्रसिद्ध सरदारों एवं विद्रोहियों के सरों को

होरहा था। इलाहाबाद के सम्बन्ध में तो कहा जाता है कि विद्रोह से पूर्व एक ऐंग्लो इण्डियन जनरल मर्चेन्ट जो इलाहाबाद मे व्यापार करता था, उस पर पचासों साहूकारो का कर्ज था। जब क्रान्ति पर अंग्रेजों ने विजय पाई तो वही ऐंग्लो इण्डियन इलाहाबाद का स्पेशल कमिश्नर बनाया गया। उसने सर्वप्रथम अपने उन सब साहूकारो को, जिनका उस पर कर्ज था, बड़ी निर्दयतापूर्वक फांसी दे दी। इस घटना की चर्चा श्री रसेल डॉन ने अपने एक पत्र में जोकि 'लन्दन टाइम्स' के सम्पादक को भेजा था, इस प्रकार की है—

"At the end of January, 1859, Sir W. X. Russel was still with Lord Clyde, and in one of his letters from Lucknow, he tells a delightful story which he heard from the Commander-in-chief Attending to this land-lord at Allahabad (Anglo Indian General Merchant), Lord Clyde said. "You doubtlessly heard what he did? No. Well he was much in debt to native merchants when the mutiny broke out. He was appointed special commissioner and the first thing he did was to hang all his creditors."

दिल्ली के पतन के पश्चात् भी वीर तात्याटोपे और रुहेलखण्ड की सेनाएँ अंग्रेजों से लोहा लेती रहीं। तात्याटोपे तो ७ अप्रैल १८५९ तक अंग्रेजों से लोहा लेता रहा, और इस बीच उसने कई बार अंग्रेजों के दाँत खट्टे किये। किन्तु तात्या को मानसिंह ने ७ अप्रैल सन् १८५९ को रात के १२ बजे सोते हुये गिरफ्तार किया। अंग्रेजो ने उसे १८ अप्रैल १८५९ को फाँसी पर लटका दिया। कहते हैं कि तात्याटोपे ने

उसे फाँसी दी गई तो उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी। इस प्रकार वीर तात्याटोपे का अन्त हुआ।

क्रान्ति के शेष नेता नाना साहब और राव साहब तथा हजरत महल आदि लडते लडते नैपाल की ओर ढकेल दिए गये। नैपाल के जंगलो मे ये सब आपस मे मन्त्रणा करते और नैपाल में सैनिक सगठन करके अंग्रेजों से फिर एक बार लोहा लेने पर परामर्श करते। किन्तु यह काय बिना नैपाल नरेश की सहायता के नही हो सकता था। जगबहादुर सिह नैपाल का राजा था। नाना साहब ने उसे एक पत्र लिखा जिसमे यह उल्लेख किया कि हम क्रान्तिकारियो की सख्या लगभग साठ हजार (६०,०००) की है और हम सब आपकी संरक्षणता में अंग्रेजो से लडना चाहते हैं जिससे भारत और नैपाल सदैव के लिये अग्रेजो के प्रभाव से स्वतन्त्र होजायें। किन्तु नैपाल नरेश तो अग्रेजो का पिट्ठू था। वह तो इस पत्र को पढकर यह समझा कि मैं न मुसीबतो मे फंस जाऊँ। अतः उसने अपने एक सरदार को इस पत्र का उत्तर देकर क्रान्तिकारियों के पास भेजा पत्र में क्रान्तिकारियों को नैपाल से निकल जाने का आदेश था। इसके पश्चात नाना जी ने अपने भाई बाला जी को राजा साहब के पास भेजा। किन्तु नैपाल नरेश ने बजाय इसके कि सहायता का वचन दें, क्रान्तिकारियो को सूचित किया कि वह नैपाल की सीमा मे घुसकर अंग्रेजों को क्रान्तिकारियो के दमन का पूर्ण अधिकार दे चुका है।

दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर और बिहार के पतन के पश्चात क्रान्तिकारियो के हौसले पस्त होगये थे। अतः उनकी एक बड़ी संख्या नैपाल मे पहुँची। नैपाल नरेश तो पहले गोरखा पलटन भेजकर देशद्रोहियों में अपना नाम लिखा चुका था। नैपाल मे क्रान्तिकारियो के जमघटे से नैपाल नरेश को भयंकर खतरा हुआ। उसने एक चेतावनी तो नाना साहब को भेजी कि वह और उसके साथी नैपाल की सीमा से

चले जाये और यदि उन्होंने ऐसा न किया तो इसका परिणाम उन्हे भुगतना पड़ेगा। साथ ही अंग्रेजो को भी सूचना दी कि नेपाल में वह अपनी सेनाओ को भेजकर क्रान्तिकारियो का दमन करें। फिर क्या था? एक बहुत बड़ी सेना नेपाल में भेजी गई। अंग्रेजी सेना ने नेपाल नरेश की सेना के सहयोग से क्रान्तिकारियो का दमन करना आरम्भ किया। कितने ही क्रान्तिकारी अँग्रेजी सेना की गोलियों के शिकार हुये और कितने ही गिरफ्तार हुये। गिरफ्तार किये गये क्रान्तिकारियो को भारत लाया जाता था जहाँ उन्हे जन समूह के सामने या तो फाँसी की सजा दी जाती थी या तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया जाता था।

रुहेलखंड का अन्तिम मोर्चा

सितम्बर १८५७ मे दिल्ली क्रान्तिकारियों के हाथ से निकल गई और १६ जुलाई का कानपुर पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया। ४ जनवरी १८५८ तक पूरा अवध और पूर्वी भारत अँग्रेजों की दासता में फिर से आ गया। अब केवल रुहेलखंड ही एक ऐसा स्थान था जहां क्रान्तिकारियों की विजय पताका खान बहादुर खां की छत्रछाया मे फहरा रही थी। अतः सारे क्रान्तिकारी नेता बरेली मे आकर जमा हो गये और गवर्नमेंट हाई स्कूल के मैदान में इन नेताओं के डेरे लगाये गये। इन नेताओं में मौलवी अहमदशाह, नाना साहब, बेगम हजरत महल और शाहजादा फीरोजशाह के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। नाना साहब अपने डेरे से प्रतिदिन गंगा स्नान करने प्रातः ४ बजे जाया करते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने एक गोश्त की दुकान की ओर नाना साहब को संकेत किया। नाना साहब ने एक ऐसा तलवार का हाथ उस दुकानदार के मारा कि उसका सर दुकान के बाहर गिरा। तब से किसी व्यक्ति ने शाही फरमान का उल्लंघन करके गोश्त की दुकान बाजार मे खोलने का साहस न किया।

रुहेलखंड मे इस समय क्रान्तिकारियो की तूती बोल रही थी और रुहेलखंड के सभी जिलों मे खान बहादुर खाँ द्वारा नियुक्त किये हुये कर्मचारी कार्य करते थे। आंवला में कल्लन खा को वहा का नाजिम (जिलाधीश) नियुक्त किया गया। मुरादाबाद मे नवाब मज्जू खाँ को वहाँ का जिलाधीश (नाजिम) नियुक्त किया गया। और ३ जून को उन्होने अपना अधिकार सम्भाल लिया। रामपुर मे उस समय नवाब यूसुफ अली खाँ नवाब थे, जो अंग्रेजो के बडे वफादार थे। किन्तु जब बख्त खाँ बरेली से रामपुर होते हुये अपनी फौज सहित दिल्ली गये तो उन्होने रामपुर के नवाब को भी ललकारा और उसे दो रास्तो मे से एक

अपनाने के लिये चैलेंज दिया अर्थात वह अपने को क्रान्तिकारियो के हवाले कर दे अथवा युद्ध के लिये मैदान मे आये। नबाब कायर भी था। उसने युद्ध से बचने के लिये अपने आपको बख्त खां के हवाले करके बख्त खा से शरण मागी और गिडगिडा कर कहने लगा, "यह गुलाम आपका बफादार है। इसे बख्श दो और इसका तख्त ताज न छीनो। यह सदा खान बहादुर खा का फरमाबरदार बना रहेगा" बख्त खा ने अवसर देखकर यह बिचार किया कि नवाब को अपनी तरफ मिलाने से क्रान्तिकारियो की शक्ति बढेगी। उसे अपनी ओर मिला लिया। किन्तु वह चुपके चुपके अँग्रेजो की सहायता करता रहा और समय समय पर रुहेलखण्ड के क्रान्तिकारियो के समाचार अपने गुप्तचरों द्वारा अँग्रेजो तक पहुँचाता रहा। बिजनौर की तो यह दशा हुई कि रुहेलखण्ड मे क्रान्तिकारियों का अधिकार होते ही वहाँ का अँग्रेज कलक्टर भाग पडा और वहां का प्रबन्ध नवाब महमूद खां के सुपुर्द कर दिया गया। खान बहादुर खां ने उन्हें अपना नायक स्वीकार कर लिया। बदायूं मे तो बरेली से पहले ही क्रान्ति की ज्वाला धधक रही थी। २५ मई को ईद वाले दिन शहर के समस्त मुसलमान इस अफवाह से प्रभावित होकर कि ईद की नमाज के बाद बलवा होगा, कलेक्टर ने अपने बँगले पर बिठा लिये। २७ मई को क्रान्ति के समाचार से अँग्रेज डर के कारण कांप रहे थे और रात को सब कलेक्टर के बँगले पर जाकर एकत्रित होगये। किन्तु क्रान्ति २ जून को हुई और १७ जून को खान बहादुर खां द्वारा अब्दुल रहमान को बदायूँ का जिलाधीश (नाजिम) नियुक्त किया तब से बदायूँ मे पूरी शान्ति रही और कोई असाधारण घटना नही घटी। शाहजहाँपुर मे भी खान बहादुर खां की तूती बडे जोरों से बोल रही थी ३० मई सन १८५७ को वहाँ की क्रान्ति अँग्रेजों के मकान

का बोलबाला था । इस प्रकार समस्त रुहेलखण्ड मे क्रान्तिकारी आन्दोलन बड़े जोरों पर था ।

खान बहादुर खाँ सिक्खों और जाटो को भी अपनी ओर मिलाने का यत्न कर रहे थे । दीवान शोभाराम से कई बार उन्होंने इस सम्बन्ध में मन्त्रणा की । अन्त में निश्चय हुआ कि एक महन्त उपहार लेकर पटियाला, काश्मीर और पजाब भेजा जाय । अतः ७ फरवरी १८५८ को एक महन्त जी बड़े बड़े मूल्य के उपहार लेकर कश्मीर और पटियाला भेजे गये । पटियाला के राजा तथा कश्मीर के महाराजा गुलाबसिंह को यह भेंट दी गई और उनसे अँग्रेजो के विरुद्ध सहायता करने की अपील की गई किन्तु उन्होंने कोरा उत्तर दे दिया जिससे नवाब खान बहादुर खाँ को बड़ी निराशा हुई । ।

खान बहादुर खाँ और मुंशी शोभाराम दोनो नैनीताल पर चढ़ाई करके समस्त कमायूँ पर अपना अधिकार जमाने के प्रयत्न मे रात के बारह बजे तक मन्त्रणा करके योजनायें बनाते थे । फरवरी सन् १८५८ मे खान बहादुर खाँ और शोभाराम ने मिलकर नैनीताल पर सेनायें भेजने का कार्य आरम्भ किया । इस समय शाहजादा फीरोजशाह और नाना साहब रुहेलखण्ड में ही थे । उन्होंने ने भी इस योजना का स्वागत किया । एक आक्रमण खान बहादुर खाँ द्वारा अक्तूबर सन् १८५७ मे नैनीताल पर हो चुका था किन्तु पहाड़ी स्थान होने के कारण उस समय रुहेलखण्ड को पूर्ण सफलता नही मिली । दूसरा पूर्ण सफलता न मिलने का कारण यह भी था कि कुछ अँग्रेजीपढ़े लिखे लोग गुप्तचर के काम मे संलग्न थे और अँग्रेजो को समाचार दे देते थे । अतः एक ऐसा समय आया कि खान बहादुर खाँ ने समस्त अंग्रेजी पढे लोगो को हिरासत मे ले लिया । शोभाराम द्वारा उन सबकी छान-बीन की गई । इनमे कई व्यक्ति ऐसे थे जो पांचवे कालम (गुप्तचर) का कार्य करते थे । फरवरी १८५८ में रुहेलखण्ड की तीन फौजे कई रास्तो से नैनीताल की ओर चलीं । इनमें से एक के सरदार फजलुलहक दूसरे के महमूद खाँ और

तीसरे के सरदार काले खाँ थे। इधर अँग्रेजो ने एक बड़ी संख्या मे नेपाल की गोरखा फौज नैनीताल मे बुलाई। दोनो सेनाओ के बीच बहुत समय तक घमासान युद्ध होता रहा और जब अँग्रेज यह समझ गये कि रुहेलखण्ड मे जब तक खान बहादुर खाँ का राज्य है, तब तक नैनीताल के अँग्रेज आराम की नींद नही सो सकते। अतः इस आशय के पत्र नैनीताल से अग्रेजों के द्वारा लार्ड केनिंग को, जो उस समय गवर्नर जनरल थे, भेजे गये।

इधर बरेली मे समस्त क्रान्तिकारी नेता आकर डट गये थे। उनके लिये रुहेलखण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा स्थान शरण लेने को नहीं रहा था। ठाकुर जैमल सिंह बरेली के कलेक्टर थे जिन्हें राजा के नाम से सुशोभित किया गया था। बुधौली वाले ठाकुर रघुनाथ सिंह ने भी खान बहादुर खाँ को अपनी सेवायें अर्पित की। अतः उन्हे भी राजा की उपाधि दी गई। किन्तु फिर भी बुधौली के बहुत से राजपूत अन्दर ही अन्दर क्रान्तिकारियो का विरोध करते थे और उन्होंने कई अग्रेज सैनिको एवं कर्मचारियो को अपने यहाँ छिपा भी रक्खा था। छिपे हुये अग्रेजो की खबरे बुधौली से दिल्ली तक पहुँचा करती थी। इस प्रकार बुधौली पाँचवे कालम का अड्डा बना हुआ था।

बदायूं जिले के तहसील सहसवान मे भी कुछ लोगो ने क्रान्तिकारियो के विरुद्ध षडयंत्र रचना आरम्भ किये। सितम्बर १८५७ में ही जब खान बहादुर खाँ ने देखा कि बदायूं का नाजिम इन उपद्रवो को दबाने में असफल है तो उन्होंने मुहम्मद यार खाँ को नाजिम बना दिया। ककराला गाँव में, जो कि बदायूं की सीमा पर था, एक बड़ी सेना एकत्रित की गई। अग्रेजो ने मार्च १८५८ में एक विशाल सेना ककराला के स्थान पर उन सेनाओ का मुकाबला करने के लिये भेजी। समस्त भारत के प्रमुख क्रान्तिकारी बरेली में नौमहिला (गवर्नमेंट हाईस्कूल के मैदान मे) अपने डेरे डालने लगे। ये लोग बरेली में अन्तिम मोर्च

लगाने की योजना बना रहे थे। अतः १८ फरवरी सन् १८५८ को शहजादा फिरोजशाह के द्वारा एक फरमान निकलवाया गया जिसमें हिन्दू मुस्लिम एकता और अंग्रेजी साम्राज्य शाही के विरुद्ध अन्तिम समय तक युद्ध करने की घोषणा की गई।

अब तो देश के कोने कोने से बहुत से क्रान्तिकारी रुहेलखण्ड की राजधानी बरेली में आकर जमा होगये। क्रान्तिकारियों के इस समय एकत्रित होने की कहानी को श्री जहीर इल्मी ने अपनी पुस्तक 'दास्ताने गदर' में इन शब्दों के साथ लिखी है, "बरेली में हर तरफ के भागे हुये क्रान्तिकारियों का जमघट है, और सब सरदार उदाहरणतया नानाराव, फीरोजशाह आदि एकत्रित होगये। रामपुर के २०,००० आदमी बरेली में मुलाजिम हैं। रामपुर के उन आदमियों की यह दशा है कि एक एक थान दुपट्टा कमर से बंधा है और आधा घोड़े की रकाब से लटकता हुआ है। चार चार तमन्चे उनकी कमर में लगे हुये हैं और घोडों पर सवार हैं। शहर में घोडे कुदाते फिरते हैं। ५०,००० का जमघट बरेली में मौजूद है।"

इधर बरेली में अंग्रेजों के विरुद्ध अन्तिम मोर्चा लगाने की तैयारी हो रही थी, उधर अंग्रेजी सेनायें दिल्ली अवध, पंजाब और राजस्थान की जीत के बाद रुहेलखण्ड की ओर बढ़ रही थी। बरेली को चारों ओर से घेर कर रुहेलखण्ड पर अधिकार जमाने की योजनायें अंग्रेजी अधिकारियों द्वारा दिन रात बनाई जा रही थी। दोनों ओर से बड़े जोरों के साथ सैनिकों का जमाव हो रहा था। मई १८५८ के आरम्भ होते ही अंग्रेजों ने बरेली के चारों ओर घेरा डाल दिया। हजारों की संख्या में सिक्ख, जाट तथा अंग्रेज सैनिक बड़ी बड़ी तोपों के साथ रुहेलखण्ड की सीमा पर मेजर कालिन की कमान में आ धमके ५ मई

रेली की पुरानी कोतवाली जहाँ खानबहादुर खाँ
को फांसी दी गई थी ।
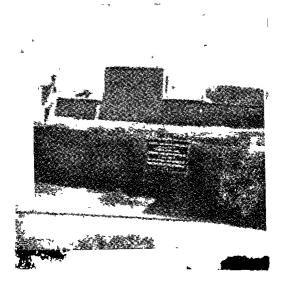
फीरोजशाह, मु० शोभाराम, ठा० जैमल सिंह राजपूत और अन्य बड़े बड़े अधिकारी थे और स्वयं खान बहादुर खां सेनाओ का नेतृत्व कर रहे थे, एक बहुत बड़ी संख्या मे गाजी लोग सर से हरे साफे बांधे हुये खान बहादुर खां की सेना मे उपस्थित थे। ५ मई १८५८ को नकटिया नदी पर दोनो फौजो के बीच घमासान युद्ध हुआ। अग्रेजो के पास जितनी बड़ी बड़ी तोपो और जितना अच्छा सैनिक संगठन था, उतनी अच्छी न तोपे ही रुहेलखण्ड की सेना के पास थी और न वैसा संगठन ही, इसके अतिरिक्त नवाब रामपुर ने कुछ पाचवे कालम के लोगो को इस सेना मे भेज रक्खा था जो परस्पर वैमनस्य फैलाने वाली झूठी बातों का प्रचार करते थे तथा अँग्रेजो की शक्ति का खुला प्रचार करते थे। बुधौली के कुछ राजपूत भी अंग्रेजों के गुप्तचर का कार्य कर रहे थे और राजपूतो को खान बहादुर खां की ओर से लड़ने से रोक रहे थे। किन्तु फिर भी रुहेलखण्ड की सेना ने दो बार अंग्रेजी सेनाओ को पीछे की ओर खदेड़ा। इधर मेजर गार्डन बिसौली से बढ़ता हुआ बरेली आ पहुँचा, बदायूं से मीरानपुर कटरा होती हुई एक और अग्रेजी फौज भी बरेली आगई। चारों तरफ से अग्रेजों की सेनायें बरेली मे आ धमकी और एक बहुत बडी सेना नकटिया नदी के उस पार अंग्रेजों ने डाल दी जिसमें बड़ी बडी तोपें और गोला बारूद थे।

सायंकाल ५ बजे से एक बहुत बडी पंजाब की सेना अग्रेजी सेना से आ मिली और रुहेलखण्ड की सेना पर गोला बारूद बरसाना आरम्भ कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि रुहेलखण्ड की सेना के पैर उखड़ गये। अंग्रेजों को क्रान्तिकारियों की सेनाओं के विध्वंश का पूर्ण अवसर मिला। खान बहादुर खां फीरोजशाह तथा उनके अन्य साथी बरेली से आंवले की ओर चले गये और रात ही रात में लगभग सारा शहर खाली होगया। ६ मई को प्रातः काल अग्रेजों की सेना ने बरेली के वीरान नगर में प्रवेश किया और जिसे जहां पाया, मौत

के घाट उतार दिया। सर्व प्रथम इन अंग्रेजों ने जोगी नवादा में प्रवेश किया जो कि उस समय पुराने शहर बरेली का एक मुहल्ला था। वहाँ शोभाराम के महल और हाथी खाने को तोपों से उड़ा दिया तथा उनके वंश के समस्त स्त्री पुरुषों को निर्दयतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया। मुन्शी शोभाराम और उनके पुत्र मु० होरीलाल पहले ही जोगीनवादा छोड़कर नये शहर मे पहुँच गये थे। नये शहर में पहुँचकर कटराभानराय में मु० शोभाराम ने एक बड़ी सेना एकत्रित करके पुनः अंग्रेजों का मुकाबला किया, किन्तु असफलता प्राप्त हुई। खान बहादुर खाँ अपने कुछ साथियों के साथ वहाँ से आँवले के जंगलों की ओर भाग गये। उधर अँग्रेजो ने शहर मे घुसकर शाहबाद में खान बहादुर खाँ के महल को ढा दिया और समस्त क्रान्तिकारियों के मकानों मे आग लगा दी। नौमहिला मुहल्ले के समस्त सैय्यदों के मकान, तथा उन सभी मकानों को जहाँ नाना राव, फीरोजशाह, बेगम हजरत महल और मौलवी अहमदशाह निवास करते थे, बारूद बिछाकर उडा दिया गया। इस प्रकार ६ तथा ७ मई को बरेली नगर में लूट-मार, कत्ल और आग लगाने की घटनायें पराकाष्ठा को पहुँच गई।

खान बहादुर खाँ और शोभाराम ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी, वरन् अपने साथियो सहित छापा मार लड़ाई करते रहे और बरेली नगर के बाद बरेली के देहातो में इन दोनो वीरों ने चप्पा चप्पा भूमि के लिये युद्ध किया। किन्तु अंग्रेजो ने तुरन्त ही एक कूटनीति की चाल चली। वह यह कि जितनी भी क्रान्ति की विरोधी शक्तियां थी उन्हें एकत्रित किया और क्रान्तिकारियों की जागीरे जब्त करके अपने वफादारों को वह जागीरे बाँटना आरम्भ की। ताकि छापामार क्रान्तिकारियों के मुकाबले में इन शक्तियो को जुटाया जा सके। अतः ठाकुर जालिम सिंह और ठाकुर रघुनाथ सिंह बुधौली वालो को अंग्रेजो की सहायता करने के उपहार मे पाँच हजार रु० तथा दो हजार रुपये

की मालगुजारी की जमींदारी दी गई। बैजनाथ मिश्रा को अंग्रेजों का साथ देने के बदले में २८ गाँव जमींदारी में मालगुजारी से मुक्त किये गये। लक्ष्मी नारायण जो पहिले कम्पनी के शासनकाल में एक खजाँची था उसे २००० रुपये की मालगुजारी के गाँव जमींदारी में दिये गये। चौधरी नौबतराय को दो हजार रुपये की मालगुजारी की जमींदारी अंग्रेजो की सहायता करने के बदले में दी गई। इसी प्रकार बदायूं के तहसीलदार को जिसने बदायूं के अंग्रेज कलेक्टर को क्रान्तिकारियों से छुपाकर भगाने में मदद की, १२००) मालगुजारी की जमींदारी के गाँव दिये गये और उसे बरेली का तहसीलदार बना दिया गया। बख्तावरसिंह मुरादाबाद के एक राजपूत--को अंग्रेजों को अपने घर में छिपाने के बदले में दो हजार रुपये की मालगुजारी की जमींदारी दी गई और शाही का तहसीलदार बना दिया गया। एक व्यक्ति बदरउद्दीन को भी अंग्रेजों को गुप्त समाचार पहुँचाने की प्रशंसा में १२००) की मालगुजारी की जमींदारी दी गई। इस प्रकार बड़ी बड़ी जागीरें क्रान्ति के विरोधियों और अंग्रेजो के वफादारों को देकर अंग्रेजों ने उनके द्वारा रुहेलखण्ड के देहात में छापामार युद्ध की समाप्ति का साधन ढूँढा। उपरोक्त व्यक्तियों ने जागीरें पाकर क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त अनेकों निरपराध व्यक्तियों को फाँसी पर लटकवा दिया जिनसे इनका वैमनस्य या विरोध था, और इस प्रकार इन्होंने रुहेलखण्ड में क्रान्ति की ज्वाला को बुझाने में अंग्रेजों का साथ दिया।

बरेली पर अंग्रेजों का अधिकार होजाने पर समस्त क्रान्तिकारी नेता नानाराव, फीरोजशाह आदि नैपाल की ओर भाग गये। किन्तु मु० शोभाराम और खान बहादुर खाँ १८५६ के अन्त तक अँग्रेजों के विरुद्ध छापामार युद्ध करते रहे। १८५६ के अन्त में दोनों रुहेलखण्ड के नेता नेपाल की ओर चले गये, जहाँ नैपाल सरकार की सहायता से अँग्रेजों द्वारा पकड़े गये। खान बहादुर खाँ और मुँशी शोभाराम

के साथ रुहेलखंड के २५७ अन्य क्रान्तिकारी भी थे। इन सबको लखनऊ ले जाकर अँग्रेजो के सुपुर्द कर दिया गया। लखनऊ से उन्हे बरेली लाया गया और फरवरी १८६० में रुहेलखण्ड कमिश्नर की अदालत के सामने पेश किया गया। खान बहादुर खाँ न्यायालय मे पहुँचकर यह कहते हुये भूमि पर बैठ गये, "बरसों कुर्सी पर बैठकर राज्य किया है अब कैदियों की जगह भूमि पर बैठना है।" किन्तु कमिश्नर ने तुरन्त स्वयं कुर्सी से उठकर सम्मान पूर्वक खान बहादुर खाँ को कुर्सी पर बैठा दिया। मुकदमे के समय खान बहादुर खां से कई प्रश्न पूछे गये। प्रथम प्रश्न यह था। "आपने जब अंग्रेजो का जीवन भर नमक खाया तो फिर अँग्रेजो के विरुद्ध क्यों विद्रोह किया और क्यों नवाब बनना स्वीकार किया?" खान बहादुर खाँ ने उत्तर दिया, "मैं नवाब जनता की राय से बना। जहाँ तक नमक खाने का प्रश्न है, यह झूठ है कि मैंने अग्रेजों का नमक खाया है क्योंकि मुझे जो वेतन या पेन्शन मिलती थी वह जनता द्वारा दिये गये धन से मिलती थी।"

दूसरा प्रश्न यह पूछा गया, "क्या यह सत्य है कि आपने अँग्रेजो को कत्ल करने की आज्ञा दी।" खान बहादुर खाँ से उत्तर दिया कि यह झूठ है। मैंने किसी अँग्रेज को मारने की आज्ञा न दी। हाँ यदि कोई अँग्रेज अथवा भारतीय हमारी स्वतन्त्रता के रास्ते में रोड़ा बनकर आ गया तो मारा गया उसकी जिम्मेदारी हम पर नही है।"

तीसरा प्रश्न यह पूछा गया कि क्या यह सत्य है कि आप ने बख्त खां के नेतृत्व मे ३०००० व्यक्तियों की रुहेलखन्ड की सेना दिल्ली में विद्रोहियों के सहायतार्थ भेजी?

उत्तर मिला, जी हाँ इसलिये कि मैं सम्राट बहादुर शाह के आधीन था और सम्राट के आदेशानुसार मैंने ऐसा किया।"
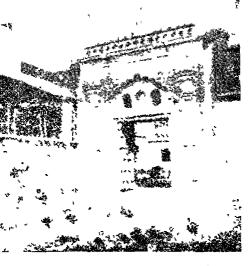
ान शोभाराम का कटरा मानराय बरेली का
निवास स्थान।

अन्त में उनसे पूछा गया कि क्या आप कुछ और कहना चाहते है ?

खान बहादुर खां ने कहा कि केवल एक फारसी की शेर कहकर अपना जवाब बन्द करता हूँ। उन्होंने निम्नलिखित शेर कही:—

मुल्क रूहेस कमदर किनारे गीरद तंग।
केबासा बरबले शमशीर आमद अरजंग॥

२० मार्च सन् १८६० को खान बहादुर को तथा उनके २५७ साथियों को फाँसी के दण्ड का आदेश सुना दिया गया और उसी दिन सायंकाल ५ बजे पुरानी कोतवाली के सामने उन्हे फासी पर लटका दिया। २५७ अन्य क्रान्तिकारियो को कमिश्नर के न्यायालय में ही एक पुराने बरगद के पेड़ पर रस्सियां डालकर फांसी दी गई। कहते हैं कि बरगद की एक शाख, जिस पर लगभग ५० व्यक्तियो को लटकाया गया था, टूट पड़ी। यह बरगद का पेड़ कमिश्नर के न्यायालय में आज भी मौजूद है, जहाँ पर ३० मई १६५७ को इन शहीदों की स्मृति में एक पत्थर लगाया गया है।

जिस दिन इन क्रान्तिकारियों को फासी लगी, बरेली नगर की चप्पा चप्पा भूमि पर फौजी सैनिकों का पहरा था, क्रान्तिकारियों की इन फांसियो को देखने एवं जनता में भय उत्पन्न करने के लिये हजारों दर्शकों को बलपूर्वक एकत्रित किया गया था। कहा जाता है कि सैकड़ो स्त्री पुरुषों की आँखों में आंसू थे। जब खान बहादुर खाँ के वंश के लोगों ने जब खान बहादुर खाँ की लाश को माँगा तो अँग्रेज कमिश्नर ने देने से इन्कार कर दिया और कहा कि तुम खान बहादुर खाँ की कब्र बनाकर उन्हे शहीद घोषित करोगे और उस पर मेले लगवाओगे। अतः खान बहादुर खाँ की लाश बरेली जिला जेल में दूसरे और तीसरे फाटक के बीच में इस प्रकार दफन की गई कि कब्र का कोई चिन्ह न रहे। दफन करते समय उनकी लाश पर कफन नही था। यह देखकर सैयाद

अलताफ अली के वंश के एक व्यक्ति ने अपना रूमाल उनके मुँह पर डाल दिया। अँग्रेजों को यह बात भी बुरी लगी और दूसरे दिन उस व्यक्ति को भी जेल भेज दिया। कहा जाता है कि फांसी के समय खान बहादुर खाँ ने यह शेर पढ़ा:—

बाजुर्मे कलमये हक मीकशन्दो गोगाये अस्त।

ज।मर्गे जिन्दगी यम गी शबद तुर्फा तमाशये अस्त।।

किन्तु फिर भी कुछ दिनों के पश्चात जहाँ खान बहादुर खाँ का दफन किया गया था, एक ताख बनाकर कुछ दीपक जलाये जाते थे। ३० मई १९५७ को इस दीपक जलाने वाले ताख के चिन्ह को ढूँढकर खान बहादुर खाँ की स्मृति में पत्थर लगाया गया।

खान बहादुर खाँ के दीवान मु० शोभाराम के विरुद्ध किसी अँग्रेज के कत्ल का अभियोग सिद्ध न हो सका। फिर भी उन्हें आजन्म काले पानी का दण्ड दिया गया और अंडमन भेज दिया गया। वहीं उनकी मृत्यु होगई। उनके वंश के अन्य व्यक्तियों को तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया। इस प्रकार रुहेलखण्ड अन्त तक अंग्रेजों से लोहा लेता रहा और १८५७ का नेतृत्व करता रहा।

इस क्रान्ति की असफलता के कई कारण थे। सर्व प्रथम कारण किसी केन्द्रीय संगठन का अभाव था। दूसरा कारण कमांडर बख्त खाँ के विरुद्ध ईर्ष्या और द्वेष का होना था। तीसरा कारण देशी नरेशों की स्वार्थ सिद्धि की भावनाएँ, चौथा क्रान्ति के उद्देश्यों का जन साधारण तक न पहुँचना, पाँचवां सिक्ख तथा जाट सेनाओं का देश द्रोह और अंग्रेजों को सहायता देना, छठा अनुशासन और नियन्त्रण की कमी और सातवां हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य एव अंग्रेजों द्वारा उसका खुला प्रोत्साहन था। इसके साथ साथ अग्रेजों द्वारा

बड़ी तोपें और नये ढंग के गोले और बारूद का प्रयोग भी १८५७ की क्रान्ति की असफलता का एक मुख्य कारण था।

१८५७ की क्रान्ति असफल अवश्य रही, किन्तु इस क्रान्ति द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता का बीज जनता मे बोया गया और आगे चलकर इस क्रान्ति की बुझी हुई चिनगारियाँ समय समय पर प्रज्वलित होती रही। १८८५ से १६४७ तक यह आग किसी न किसी रूप में सुलगती रही और अन्त में इन्ही क्रान्तिकारियो द्वारा दी गई प्रेरणा से १५ अगस्त १६४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। हम यह कह सकते हैं कि १८५७ की क्रान्ति अग्रेजों के विरुद्ध भारत का प्रथम स्वातंत्र्य समर था और १६४२ में "अग्रेजो भारत छोड़ो" का नारा लगाकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अँग्रेजो के विरुद्ध दूसरे युद्ध का श्रीगणेश किया जिसका परिणाम हमने १५ अगस्त १६४७ को पूर्ण स्वराज्य के रूप मे पाया।

श्री पी० सी० आजाद द्वारा लिखित

निम्न पुस्तकें

'स्वराज्य प्रकाशन'

३५/२८ सिविल लाइन्स

के पते पर

मिल सकती हैं :

१.	जिन्दाने वला (उर्दू)	१-५० न०पै०
२.	इनकलाबे-वतन (उर्दू)	२-०० ,,
३.	१८५७ की क्रान्ति और रुहेलखंड (हिन्दी)	२-०० ,,
४.	सामान्य ज्ञान (हिन्दी)	१-५० ,,
५.	जमाने की आंख (हिन्दी व उर्दू)	३-०० ,,
६.	घर का चिराग (हिन्दी)	३-०० ,,
७.	आंसुओं के फूल (हिन्दी)	३-०० ,,
८.	हमारी आजादी की लड़ाई (हिन्दी)	१-०० ,,

—प्रकाशक

❀❀❀